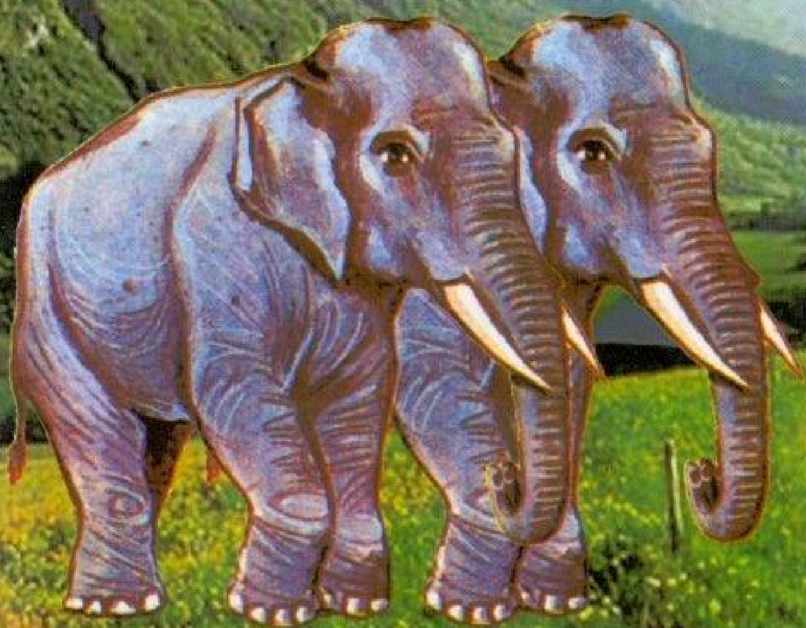
बाल निर्माण की कहानियाँ

५



बाल निर्माण की कहानियाँ

(भाग–५)

लेखिका

डा. आशा 'सरसिज'

प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०– २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१४ मूल्य : ११.०० रुपये

विषय-सूची



चूहे की विदेश यात्रा

लन्दन के एक बड़े से भवन में जार्ज नाम का एक चूहा रहता था । वह विदेश भ्रमण में बड़ी रुचि रखता था । अनेक देशों में वह घूमा था । यही कारण था कि जगह–जगह के लोगों को, उनकी वेश–भूषा, आचार–व्यवहार, संस्कृति, रहन–सहन को देखने–परखने से उसका ज्ञान भी बड़ा व्यापक हो गया था ।

जार्ज ने भारत देश की बड़ी प्रशंसा सुनी थी । अतएव उसके मन में भारतवर्ष देखने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई । एक बार मौका देखकर जार्ज चुपके से कर्मचारियों की नजर बचाकर लन्दन से आने वाले एयर इण्डिया के एक वायुयान में सवार हो गया । कहीं कोई उसे बीच में ही मारकर भगा न दे–इस भय से वह चुपचाप 'प्रसाधन' में छिपकर बैठा रहा । दिल्ली का पालम हवाई अड्डा आने पर ही उसने चैन की साँस ली । जब सब यात्री उतर कर चल दिये और हवाई जहाज पूरी तरह खाली हो गया तो जार्ज भी चुपचाप सभी की नजर बचाकर उतर गया ।

झिलमिलाती हुई रोशनी में नहाती दिल्ली की चहल–पहल और रंगीनियों को देखते हुए जार्ज चुपचाप चला जा रहा था । इस अपरिचित देश में कहाँ रुकना चाहिये ? यही वह मन में सोचता जा रहा था । तभी उसकी निगाह सामने से आते चूहे और चुहिया पर पड़ी । वे दोनों उसके पास जाकर रुक गये । चूहा कहने लगा–'नमस्ते हमारे विदेशी अतिथि ! आप कुछ परेशान से लगते हैं, कहिये हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं ?'

जार्ज उनके मृदु व्यवहार से बड़ा ही प्रभावित हुआ । बोला–'भाई तुमने ठीक पहिचाना । मैं अभी–अभी लन्दन से आया हूँ । यहाँ मैं किसी को जानता नहीं अतएव कहाँ रुकूँ, यही सोचकर चिन्ता कर रहा था ।'

'भाई ! यदि ऐसी ही बात है, तो आप मेरे अतिथि बनें । इससे मुझे बड़ी खुशी होगी । मेरा नाम तन्मय है । आप मुझे तनु कह सकते हैं और यह तुम्हारी भाभी जी ।' तन्मय चूहा बोला ।

'नमस्कार भाभीजी !' भारतीय परम्परा के अनुसार दोनों हाथ जोड़कर जार्ज बोला । तन्मय की पत्नी ने भी प्रत्युत्तर में हाथ जोड़कर अभिवादन किया ।

'चलो फिर घर चलें, वहाँ बैठकर बातें होंगी ।' तन्मय ने कहा । रास्ते में वह जार्ज को बतलाता रहा कि अशोक होटल के बहुत पास ही उसका घर है । अतएव खाने की कोई कठिनाई नहीं । नई-नई खाने की चीजें रोज खाने को मिल जाती हैं ।

कुछ मील का रास्ता पार करके सभी घर पहुँचे । एक छोटे से, पर साफ-सुथरे बिल में तन्मय का घर था । तन्मय और उसकी पत्नी ने जार्ज का खूब स्वागत-सत्कार किया । भोजन के बाद तन्मय ने जार्ज के स्वागत में अपने चार-पाँच मित्रों को एकत्रित कर लिया । कोई नाचने लगा तो कोई गाने । बड़ा ही हँसी-खुशी का मनोरंजक वातावरण बन गया । जार्ज इतनी देर से सुन रहा था कि तनु और उसके दोस्त अंग्रेजी में ही बातें कर रहे हैं, अंग्रेजी गाने गा रहे हैं । उसने बड़े आश्चर्य से पूछा-'क्या आपके देश की कोई भाषा नहीं ?'

'है क्यों नहीं ! हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है ।' तनु का दोस्त बतलाने लगा । पर आपकी समझ में आ जाये, इसलिये हम आपकी भाषा में बातें कर रहे हैं ।'

'मैंने यहाँ आने से पहले आपकी भाषा अच्छी तरह सीख ली है और हम विदेशी तो बाहर जाने पर सदैव अपनी भाषा का ही प्रयोग करते हैं । अपनी राष्ट्रभाषा, अपने देश के गौरव का प्रतीक है ।' जार्ज गर्व से सिर तानकर बोला ।

'हमारे यहाँ तो अंग्रेजी का ही बहुत प्रचार है । विशेष रूप से शिक्षा में, सरकारी काम–काज आदि में ।' तन्मय बोला ।

'ओह ! तभी तुम्हारा देश उतनी प्रगति नहीं कर पा रहा, जितनी कि वह कर सकता है । अपनी मातृभाषा, राष्ट्रभाषा को छोड़कर पराई भाषा के प्रयोग से भला कहीं अपनी प्रतिभा का भी विकास हो सकता है ?' जार्ज ने कहा ।

तन्मय और उसके मित्र बड़े ही लज्जित हुए । बात उनकी भी समझ में आ रही थी । उन्होंने प्रतिज्ञा की कि अब वे सदैव मातृभाषा का ही प्रयोग करेंगे । अपने बच्चों में भी विदेशी भाषा के प्रति मोह न जगायेंगे ।

दूसरे दिन तन्मय ने जार्ज को दिल्ली घुमानी शुरू कर दी । लालकिला, कुतुबमीनार, जन्तर–मन्तर, चिड़ियाघर आदि अनेक स्थान दिखाये । जार्ज तनु की अतिथि परायणता से भी बड़ा ही प्रसन्न था । जितनी आत्मीयता और स्नेह उसे भारतवर्ष में मिला था उतना तो अपने देश में भी नहीं मिला था । वहाँ तो भौतिक सुख–सुविधाओं का ही अम्बार था, पर सच्चा प्यार पाने के लिये प्राण तरस उठते थे ।

पन्द्रह दिन तक दिल्ली की खूब सैर करने के बाद जार्ज ने अपने मित्र से विदा चाही, जिससे वह भारत के अन्य दर्शनीय स्थान देख सके । विदा के पूर्व तनु ने एक विशाल प्रीतिभोज का भी आयोजन किया, जिसमें उसके बहुत से मित्र भी थे । जार्ज अपने मित्र के स्नेह पूर्ण व्यवहार से बड़ा ही कृतकृत्य था ।

विदा के दिन तन्मय ने पूछा–'दोस्त ! सच–सच बताना कि हमारा देश तुम्हें कैसा लगा ?'

'मैं जो भी कहूँगा सच ही कहूँगा । सच कहने के लिये चाहे वह कठोर ही क्यों न हो, मैं बहुत बदनाम हूँ ।' अपनी बड़ी–बड़ी सुन्दर आँखों को ऊपर उठाकर, मूछों को फड़फड़ाकर जार्ज बोला ।

फिर पल भर चुप रहकर बोला—'दोस्त ! तुम्हारा देश जैसा सुना था वैसा ही पाया । पृथ्वी पर स्वर्ग जैसा लगता है । प्रकृति ने इसे खुले हाथों से वरदान दिया है । पारस्परिक प्यार और सहानुभूति जितनी मैंने यहाँ पायी है ओर किसी देश में नहीं है । ईश्वर में आस्था—विश्वास तुम्हें बहुत से पापों से बचा लेता है । तुम्हारा देश और संस्कृति बहुत महान् है, पर.........कहते हुए बड़े ही श्रद्धा के भाव भरे थे जार्ज की आँखों में ।

'पर क्या ?' तन्मय ने तुरन्त पूछा ।

'पर भाई किसी देश की संस्कृति की महानता तभी तक रहती है, जब तक कि वहाँ के रहने वाले उसे बनाये रखें । तुम्हें सुनकर बुरा तो लगेगा, पर सच है तो कहूँगा ही कि तुम लोग अपने देश के गौरव को, उसकी महत्ता को भुला बैठे हो । तुम विदेशी भाषा का, विदेशी सभ्यता का अन्धानुकरण कर रहे हो । ध्यान रखो ! हमारी भौतिकता तुम्हें कभी सुख नहीं दे सकती । यदि भौतिक सुख—साधनों से ही आत्म—शान्ति मिल पाती तो फिर हजारों विदेशी उसे पाने के लिये तुम्हारे देश में ही क्यों आते ? यदि तुम अपनाना ही चाहते हो तो हमारे गुण अपनाओ—सफाई, ईमानदारी, शिष्टाचार, नैतिकता आदि । ओह ! मैं तो उपदेश ही देने लग गया........तुम भी मन में क्या सोच रहे होगे ?' कहते—कहते जार्ज अनायास ही चुप हो गया ।

'नहीं मित्र ! तुम सच ही कह रहे हो । अपने दिशवासियों को मैं तुम्हारा सन्देश जरूर दूँगा ।' तन्मय भाव भरे स्वर में बोला ।

तन्मय ने जार्ज को बहुत सारे उपहार दिये । दोनों दोस्त देर तक एक—दूसरे के गले मिलते रहे । जार्ज कहने लगा—'भाभीजी को लेकर आओ न कभी ।'

'जरूर... जरूर....।' तनु की पत्नी प्रसन्न होते हुए बोली ।

'मैं तुमको, तुम्हारे स्नेह—आत्मीयता को कभी भुला नहीं सकता ।' जार्ज रुँधे गले से बोला और आँसू भरकर चलने लगा ।

चलते–चलते जार्ज बार–बार पीछे मुड़कर अपने स्नेही मित्रों को देखता जाता था । तन्मय और उसकी पत्नी देर तक खड़े होकर हाथ हिला–हिलाकर उसे विदाई देते रहे । जार्ज जब आँखों से ओझल हो गया तो तनु बोला–'चलो वापस चलें ।'

'हाँ चलना ही होगा........।' सूने रास्ते के एकटक देखती उसकी पत्नी बोली ।

दोनों ने घर की ओर कदम जरूर बढ़ाये, पर उन्हें लग रहा था कि उनके जीवनभर का परम स्नेही मित्र बिछुड़ गया है ।



परिवर्तन

नन्दन उद्यान में मीलों तक आम का वन फैला हुआ था । उस वन में अनेकों पक्षी निवास करते । तोता, मोर, गिलहरी, कबूतर, नीलकण्ठ, खरगोश, कोयल न जाने कितने प्राणी उसमें रहते थे । सभी हँसी–खुशी से गाते, खेलते, उड़ते और थिरकते । पूरे के पूरे उद्यान में उदास रहता था तो बस अंशू नाम का खरगोश । आम के पेड़ के नीचे वह चुपचाप गुमसुम बैठा रहता । न किसी से बोलता न किसी से बातें करता । सभी प्राणियों ने उसका बहिष्कार कर रखा था ।

एक बार मैत्री नाम की एक कोयल दूर देश से उड़ते–उड़ते आई । वह आम के उस पेड़ पर ही आकर रुकी, जिसके नीचे अंशू का घर था । अंशू पर निगाह पड़ते ही बोली–'नमस्ते भाई ! मैं मैत्री कोयल हूँ । दूर देश से उड़ते–उड़ते यहाँ आई हूँ ।'

अंशू ने उसकी ओर आँख उठाकर भी न देखा । नीची निगाह करके ही बोला–'रहोगी यहाँ कुछ दिन ?'

'हाँ ! अभी कुछ दिन तो हूँ ही ।'

इसके बाद अंशू ने उससे एक भी बात न की । चुपचाप अपने काम में लगा रहा । मैत्री को यह बड़ा बुरा लगा । एक अपरिचित से कुछ तो बातें करनी ही चाहिये । दूर देश से आये थके यात्री से कुछ तो उसकी जरूरत पूछनी ही चाहिये थी, पर अंशू में तनिक भी शिष्टाचार न था । मैत्री को तेज प्यास लगी थी । अतएव वह इच्छा न रहते हुए भी बोली-'क्या यहाँ कहीं पानी मिल सकता है ?'

अंशू बिल के अन्दर गया । एक हाथ में पानी और एक हाथ में खाना लाया । पानी देने के बाद बोला-'भूखी होगी, लो खाना भी खा लो । पानी का खाली बर्तन उठाकर वह फिर बिल के अन्दर घुस गया । मैत्री समझ गयी कि खरगोश का दिल तो बुरा नहीं है, पर इसमें बोलने का शिष्टाचार नहीं है ।'

मैत्री अब नन्दन उद्यान में ही रहने लगी थी । उसने देखा कि अंशू से कोई पशु-पक्षी बात करना भी पसन्द नहीं करता । वह खुद किसी से मिलना-जुलना नहीं चाहता था । कोई उसके घर आया तो वह इधर-उधर छिप जाता या फिर बच्चों से कहलवा देता कि पिताजी घर में नहीं हैं । पत्नी-बच्चों से भी वह प्यार से बहुत कम बातें करता । हर समय खिजलाया-सा रहता ।

एक बार अंशू की पत्नी बच्चों को लेकर मायके चली गयी । घर में रह गया अंशू । एक दिन अचानक ही उसको तेज बुखार आ गया । रात भर वह बिल में पड़ा कराहता रहा । जब वह सुबह भी घर से न निकला तो मैत्री सोचने लगी कि जरूर अंशू बीमार पड़ गया है । पहले तो उसने सोचा-'बीमार है तो रहने दो । ठीक से सीधे मुँह बात तक तो करता नहीं । हर समय न जाने क्यों मुँह फुलाये रहता है ?' पर दूसरे ही क्षण अपने आपको इन विचारों

के लिये धिक्कारते हुए कहने लगी कि यदि बुरे के साथ हम भी बुरा करने लगें तो फिर हमारी सज्जनता का मूल्य भी क्या रहा ? बुरे को बुराई से नहीं अच्छाई से ही सुधारा जा सकता है ।

मैत्री अंशू के घर गयी तो पाया कि वह तेज बुखार से तप रहा है । शरीर के दर्द से छटपटा रहा है । मैत्री ने उसके मुँह में पानी डाला तो अंशू ने तुरन्त ही आँखें खोल दीं । उसकी आँखों में बड़ी कृतज्ञता का भाव भरा था । 'ओह मैत्री दीदी ! तुमने इतना कष्ट किया ।' कहकर अंशू ने तेज बुखार के कारण आँखें मूँद लीं ।'

'मैं अभी डाक्टर को लेकर आयी ।' कहकर मैत्री उड़ चली तेजी से चेता लोमड़ी के यहाँ । उसने न अपने खाने की परवाह की और न आराम की । चौबीस घण्टे उसके सिरहाने बैठी रहती । निश्चित समय पर दवा देती, फल खिलाती, सिर पर ठण्डे पानी की पट्टी रखती और उसका बदन दबाती । अंशू को इस सबसे मन ही मन बड़ी लज्जा आती । वह सोचता मैंने तो इससे कभी सीधे मुँह बात भी न की थी । कभी इससे इसके सुख-दुःख की भी न पूछी थी । फिर भी यह मेरी कितनी सेवा कर रही है-यह सोचकर उसे अपने ऊपर बड़ी ग्लानि आती ।

चेता लोमड़ी द्वारा नन्दन उद्यान में सभी को अंशू की बीमारी की बात पता चल गयी थी, पर कोई उसे देखने तक न आया । एक दिन उससे न रहा गया । वह मैत्री से कह ही बैठा-'दीदी ! मैं इतना बीमार रहा, फिर भी कोई पशु-पक्षी मुझे देखने न आया । तुम न आयी होतीं तो मेरे प्राण ही निकल गये होते ।'

'बुरा न मानना, अंशू भैया एक बात पूछूँ !' मैत्री बोली ।

'हूँ........।' अपने कान हिलाकर, गर्दन टेढ़ी करके उसने स्वीकृति में सिर हिलाया ।

'क्या तुम भी किसी के सुख–दुःख में भाग लेते हो ?' मैत्री पूछ रही थी ।

'नहीं तो ।' धीमे स्वर से पुतली हिलाकर अंशू बोला ।

'तो फिर दूसरों से कैसे उम्मीद करते हो कि वे तुम्हारे दुःख दर्द में साथ देंगे । गम्भीर बनी मैत्री कह रही थी–बुरा न मानना भाई ! जो किसी से मिलना–जुलना नहीं चाहता, दूसरों के आने पर मुँह लटका लेता है, घर में छिप जाता है, ऐसे मनहूस से कौन सम्बन्ध रखेगा ? हम किसी को क्या दे सकते हैं ? पर हाँ मीठी प्यार भरी वाणी से सभी का मन जीत सकते हैं । चुप्पी और कठोर बोली छोड़कर मीठे स्वर में सभी से बातें करो । फिर देखो कौन तुम्हें नहीं चाहता ? जैसा व्यवहार तुम करते हो उससे न तुम्हें सुख मिल सकता है और न दूसरों को । दूसरों से वह व्यवहार न करो जो तुम्हें अपने लिये पसन्द नहीं ।'

आज पहली बार किसी ने अंशू को इतने खरे शब्दों में उसके व्यवहार की कमी बताई थी । यह सुनकर उसकी आँखें खुल गयी थीं । ओह ! तो मेरे रूखे व्यवहार के कारण सभी मुझसे दूर रहना चाहते हैं ?' वह मानो अपने आप से कहने लगा ।

'और क्या ? दिल से तो तुम बहुत अच्छे हो, पर दिल की गहराई तक झाँका कैसे जा सकता है ? मन में क्या है ? यह व्यवहार से ही तो पता लगता है । मन को अच्छा बनाओ और व्यवहार को मीठा । फिर देखो सभी तुम्हें सिर माथे पर बिठायेंगे ।' मैत्री ने कहा ।

'मैं कितनी गलती पर था ? अपनी गलती जल्दी ही सुधार लूँगा ।' मन ही मन उसने कहा और फिर सिर को खुजाते हुए कुछ सोचने लगा ।

अंशू जब ठीक हो गया तो उसने नन्दन उद्यान के सभी पशु–पक्षियों को निमन्त्रण दिया । सभी आश्चर्य कर रहे थे कि किसी से कोई सम्बन्ध न रखने वाला अंशू आज इतना उदार कैसे बन गया ।

किस खुशी में यह इतनी मजेदार दावत दी गयी है ?' चटखारे भरती हुई चंचल गिलहरी पूछने लगी ।

'अपने ठीक होने की खुशी में । यदि यह मैत्री दीदी न होती तो मेरे प्राण–पखेरू उड़ गये होते । इन्हीं ने अपनी सेवा से मुझे जीवनदान दिया है ।' मेहमानों को खाना परोसती मैत्री की ओर इशारा करके अंशू ने कहा ।

अंशू की पत्नी और बच्चे भी उसके स्वभाव और व्यवहार परिवर्तन पर बड़े खुश थे । वे इसके लिये मन में मैत्री कोयल को बहुत–बहुत धन्यवाद दे रहे थे ।

कुछ दिनों के बाद मैत्री कोयल अंशू और नन्दन उद्यान के सभी प्राणियों से विदा लेकर अपने देश उड़ चली । अंशू को उसके जाने का बहुत दुःख हो रहा था । उसने मैत्री के ढेरों उपहार दिये, दूर तक वह उसे छोड़ने गया ।

दो महीने बाद मैत्री को अंशू का पत्र संदीप कबूतर द्वारा मिला । उसमें लिखा–'मैत्री दीदी ! जीवन भर मैं तुम्हें भूल नहीं सकता । तुमने अपने प्यार भरे व्यवहार से मेरे जीवन की धारा ही बदल दी । तुम्हें जानकर खुशी होगी कि नन्दन उद्यान के सभी पशु–पक्षी अब मुझे बहुत चाहने लगे हैं ।'

सन्तोष से कुहुक–कुहुक कर उठी मैत्री । फिर वह अपने मन में कहने लगी–'दूसरों को अच्छाई का रास्ता दिखाने में ही इस जीवन की सार्थकता है ।'



दहेज का लोभ

कश्मीर राज्य में बर्फीले पर्वतों से घिरा हुआ लद्दाख नाम का एक बड़ा ही सुन्दर क्षेत्र है । लेह यहाँ का प्रसिद्ध नगर है । चारों ओर फैली हुई हरियाली, नीले रंग की नयनों को लुभाने वाली झीलें, चारों ओर खड़े आसमान को छूते पर्वत इसके आकर्षण को अधिक बढ़ा देते हैं ।

एक बार जम्मू शहर के हाथियों का दल घूमता हुआ लेह नगर के एक वन में आया । वह उन्हें अधिक भाया । इस दल की नेता आदर्श नाम की हथिनी ने कहा-'अरे ! इस स्थान को देखकर तो लगता है, मानों स्वर्ग में ही आ पहुँचे हों । यदि आप सभी सहमत हों तो हम अपना स्थान यहीं पर बना लें ।'

दल के सभी हाथी और हथिनी भी जैसे यही सोच रहे थे । उन्होंने एक-दूसरे की सूड़ से सूड़ मिला, चिंघाड़कर नेता की इस बात का समर्थन किया ।

धीरे-धीरे लेह के उस वन में बहुत से और भी हाथी आकर बसने लगे । हाथियों की एक बहुत बड़ी बस्ती ही यहाँ बन गयी ।

पंकज नाम के एक हाथी ने भी उस जगह की बड़ी प्रशंसा सुनी थी । पंकज एक सर्कस कम्पनी में काम करता था । जब बुड्ढा हो गया तो उसके मालिक ने उसे वन में छोड़ दिया । सर्कस के डेरे से रात में चुपचाप वह अपने बेटे जय को भी ले आया । रात ही रात में दोनों बाप-बेटे जल्दी-जल्दी लेह के वन की ओर कदम बढ़ाने लगे, जिससे कि सुबह होते ही कहीं वे सर्कस के कर्मचारियों की पकड़ में न आ जायें ।

अन्त में दोनों लेह के वन में पहुँच ही गये । वहाँ जाकर पंकज ने आदर्श हथिनी को अपना परिचय दिया और

वहाँ रहने की अनुमति माँगी । आप जैसा अनुभवी हमारे साथ रहे, इसमें मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी ।' आदर्श ने कहा ।

धीरे-धीरे पंकज उस वन में बड़ा ही लोकप्रिय हो गया । इसका कारण था-उसका अच्छा व्यवहार, मीठी वाणी, दूसरों की सहायता करने की आदत । पंकज का बेटा जय भी अपने पिता की भाँति गुणवान था । माता-पिता के संस्कार निश्चित रूप से बच्चों पर पड़ते हैं । बच्चे उपदेश से नहीं उनके आचरण से सीखते हैं । जय का व्यवहार भी बड़ा ही सौम्य था । बड़ों से प्रतिदिन नमस्ते करता, सत्य बोलता, किसी से कड़वी बात न कहता । सारे दिन वह परिश्रम करता रहता था । देखने में भी वह बहुत सुन्दर था । सफेद दूध-सा रंग, आगे को निकलते चमकते हुए दो दाँत, मस्तक से बहता मदजल जो भी उसे देखता मुग्ध हो जाता । उसके गुणों ने उसकी सुन्दरता में चार चाँद लगा दिये थे ।

आदर्श की एक ही बेटी थी-मधु । जब वह युवती हो गयी तो उसने सोचा-'क्यों न मधु का विवाह जय के साथ कर दिया जाय । जय जैसा वर ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा । फिर बेटी भी अपनी आँखों के सामने रहेगी ।'

आदर्श ने जब यह बात अपने पति जितेन्द्र को बताई तो उन्हें भी बड़ी खुशी हुई । दूसरे ही दिन विवाह का प्रस्ताव लेकर वे पंकज के घर चल पड़े ।

'यह बड़ा ही सौभाग्य है जो आज आप मेरे यहाँ आये हैं । बताइये मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?' उन्हें जलपान करने के बाद पंकज ने पूछा ।

'भाई साहब ! बात यह है कि हम जय बेटे के साथ अपनी बिटिया मधु के विवाह का प्रस्ताव लेकर आये हैं । कैसी ही सुन्दर गुणवान जोड़ी रहेगी दोनों की । सुन्दर-सी कल्पनाओं में डूबी आदर्श ने ही बात का जबाव दिया । वह

सोच रही थी कि निश्चित ही पंकज इस प्रस्ताव को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेगा । उसकी प्यारी बेटी मधु सारे वन में अपनी बुद्धि व सद्व्यवहार के लिये प्रसिद्ध थी ।'

पंकज यह बात सुनकर सकपका गया । 'बहिन जी ! मैं आपकी बात स्वीकार कर लेता.....पर अपनी सूँड से सिर खुजाते हुए वह झल्लाकर बोला–'क्योंकि उसे तो स्वप्न में भी ऐसी उम्मीद न थी ।'

'पर क्या ?' जिज्ञासा से जितेन्द्र ने अपनी छोटी–छोटी आँखें उसके चेहरे पर गढ़ाकर पूछा ।

'वास्तव में भाईसाहब बात यह है कि मेरे एक ही बेटा है । मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि जहाँ से बहुत–सा दहेज मिलेगा, वहीं से मैं उसका विवाह करूँगा । साफ–साफ बताइये कि दहेज में आप अपनी बेटी को क्या–क्या देंगे ?' पंकज कुछ देर चुप रहने के बाद बोला ।

आदर्श यह सुनकर गुस्से से भर उठी । वह तुरन्त उठकर खड़ी हो गयी । चिंघाड़कर बोली–'ओह ! तो आप अपने बेटे का सौदा करना चाहते हैं । इतने वर्षों तक मनुष्यों की संगति में रहकर इस विषय में आप भी उनके जैसे लालची, मूर्ख और नीच बन गये हैं । मुझे ऐसा पता होता तो मैं कभी न आती आपके द्वार पर ।'

फिर आदर्श जितेन्द्र को अपनी सूड़ से खींचती हुई बोली–'चलो चलें जितेन्द्र ! दहेज के लोभी राक्षस से अपनी बेटी हमें नहीं ब्याहनी । अच्छा है जो यह पहले पता लग गया, नहीं तो बाद में न जाने क्या–क्या दुःख देता हमारी बिटिया को ।'

जाते–जाते वह यह भी कह गयी–'पंकजजी ! बेटी को विदा करते समय उसे नया घर बसाने के लिये हर माता–पिता कुछ न कुछ देते ही हैं । मैं भी जरूर देती, पर आपकी बातें

सुनकर ही मेरा माथा ठनक गया है । दहेज के आप जैसे लोभी ही बहुओं को मारते–पीटते हैं, उनके प्राण लेते हैं ।

पलभर में ही सारे वन में यह बात आग की तरह फैल गयी । सभी हाथी पंकज पर थू–थू करने लगे । उसके सारे गुणों को इस एक अवगुण ने धूमिल बना दिया । सभी कहने लगे–'निश्चित ही यह कुविचार मनुष्यों की संगति में रहने के कारण आया है ।'

महेन्द्र दादा जो बहुत ही वृद्ध और अनुभवी थे, उन्होंने बताया कि किस प्रकार मनुष्य समाज में यह कुप्रथा है ? दहेज के लोभी वर के पिता बेटी के पिता का घरद्वार तक बिकवा देते हैं । वे उसे दहेज जुटाने के लिये रिश्वत लेने, चोरी करने और भी बहुत पाप करने पर मजबूर कर देते हैं ।

'ओह ! तभी यह पंकज भी इतना धूर्त है । इसे तो वापस उन्हीं धूर्तों के समाज में भेज देना चाहिये ।' वृद्धा कौशल्या हथिनी ने सुझाव दिया ।

कई दिनों तक सारे के सारे वन में इस बात की चर्चा रही । चार हाथी जहाँ भी जुड़ते यही बात करते ।

उधर आदर्श हथिनी इस बात को लेकर चिंतित थी कि वह मधु के योग्य वर कहाँ ढूँढे । सौभाग्य से तभी उसके गुरुजी और गुरुआनीजी लेह के उस वन में देशाटन करते हुए पधारे । आदर्श की चिन्ता का कारण सुनकर गुरुजी मुस्करा पड़े । उन्होंने एक तेज चलने वाले हाथी को बुलाया और उसके कान में देर तक कुछ कहा । जब वह हाथी चला गया तो हाथियों के गुरुजी आदर्श से बोले–'जाओ बेटी ! अपनी पुत्री के विवाह की जोर–शोर से तैयारी करो । कल शाम को ही एक योग्य वर आ जायेगा ।'

'सो कैसे ?' आदर्श ने उत्सुकता से पूछा ।

'तुम जानती ही हो कि मेरे धर्म सम्प्रदाय में अनेकों योग्य शिष्य दीक्षित हैं । मेरा वे इतना सम्मान करते हैं कि आज्ञा टाल नहीं सकते । अभी जो हाथी गया है न, उसके द्वारा मैंने एक शिष्य को बुलाया है । वह बहुत अधिक सुन्दर तो नहीं है, पर इतना विश्वास पूर्वक कह सकता हूँ कि उसकी योग्यता में कोई कमी नहीं । मधु बिटिया को कभी वह दुःख नहीं देगा ।'

आदर्शी कृतज्ञता से भर उठी । झुककर सूँड़ से उसने गुरुजी के पैर छूए और झूमते-झूमते बाहर निकल गयी । सभी को यह शुभ सन्देश सुनाने । दूसरे दिन सभी हाथियों ने मिलकर नदी के किनारे का भाग खूब साफ किया, खूब सजाया । जगह-जगह बन्दनवार, केला के पत्ते और फलों की डाल लगाई गयीं । एक ऊँचे से सजे हुए मंच पर मधु और वर श्यामवीर को बिठलाया गया । दोनों ने एक-दूसरे के गले में अपनी-अपनी सूँड़ से मालायें डालीं । सभी हाथियों ने सूँड़ आसमान में उठाकर-चिंघाड़कर उनका स्वागत किया । फिर सभी ने वर-वधू पर पुष्प बरसाये । गुरुजी और उनकी पत्नी ने भी दोनों के मस्तक चूमकर उन्हें सुखी गृहस्थ जीवन के लिये आशीर्वाद दिया । दूसरे दिन प्रातःकाल ही वधू की विदाई थी । आदर्शी ने जानबूझकर श्यामवीर को परखने के लिये कोई सामान नहीं दिया । चलते समय बस रास्ते के लिये खाना भर ही उन्हें पकड़ाया और श्यामवीर की ओर देखकर बोलीं-'दामादजी ! देने के लिये बस हमारे पास बिटिया मात्र ही है ।'

यह सुनकर श्यामवीर उनके पैर छूकर बोला-'माताजी आप भी कैसी बातें करती हैं । इतने वर्षों तक जिसे आपने पाला-पोसा, हर तरह से योग्य बनाया, इस निधि को तो आप मुझे दे रही हैं । देने के लिये इससे बड़ी और भी कोई सम्पत्ति हो सकती है क्या ?'

कुछ पल रुककर फिर वह आगे कहने लगा–'मुझमें इतनी शक्ति है, इतनी योग्यता है कि मैं मनचाही वस्तु जुटा सकूँ । अपने पौरुष से जो चीज लायी जाती है उसी की सार्थकता होती है । दूसरे की दी हुई चीज पर निर्भर रहने वाले और खुश होने वाले तो भिखमगे होते है । आप तो मुझे बस यही आशीर्वाद दीजिये कि मेरी यह सद्बुद्धि और पुरुषार्थ बना रहे ।'

आदर्श को ऊँचे विचारों वाले अपने इस दामाद पर गर्व होने लगा । सिर थपथपाकर गले मिलकर उसने बेटी–दामाद को विदा किया । हाथियों को एक लम्बा जुलूस गाँव के किनारे तक वर–वधू को विदा करने गया ।

ससुराल से मधु चिन्मय कबूतर से कई बार अपना सन्देश भिजवा चुकी है । उसने पत्र में लिखा था–'माताजी ! मैं अपने इस नये घर में बड़ी प्रसन्न हूँ । सभी मेरा बड़ा सम्मान करते हैं और प्यार से 'गृहलक्ष्मी' कहकर पुकारते हैं । पूज्य पिताजी ने मेरा नाम 'मधुलक्ष्मी' रख दिया है । आप मेरी ओर से किसी बात की चिन्ता न करना ।'

और अब आदर्श मधु का यह समाचार सब हाथियों को बताती रहती है ।

उधर अब पंकज और जय का समाचार भी सुनिये । उस घटना के बाद से ही सभी हाथियों ने उसका बहिष्कार कर दिया था । न कोई उनके पास जाता था, न बोलता था । कोई भी हाथी अपनी बेटी का विवाह जय के साथ करने के लिये तैयार नहीं हुआ । लाचार होकर दोनों को वह सुन्दर वन छोड़कर बाहर जाना पड़ा । वहाँ एक हाथी से बहुत–सा दहेज लेकर पंकज ने जय का विवाह भी रचा दिया ।

एक दिन महेन्द्र दादा प्रातः भ्रमण के लिये जा रहे थे । वहाँ उन्होंने एक दुबले–पतले हाथी को बड़े ही उदास और निराश बैठे हुए देखा । ध्यान से देखने पर उसकी सूरत

कुछ जानी–पहचानी सी लगी । धीरे–धीरे वे उसके पास गये और चौंकते हुए बोले–'तुम जय हो क्या ?'

जय ने सिर उठाकर ऊपर देखा और उन्हें प्रणाम करते हुए भरे स्वर में बोला–'हाँ मैं जय ही हूँ ।'

'अरे बेटा ! यह क्या हाल हो गया है तुम्हारा ? सुन्दर–सी तुम्हारी काया सूखकर काँटा हो गयी है । पहिचाने भी नहीं जाते तुम तो, बीमार पड़ गये थे क्या ?'

'दादाजी ! बीमारी तो मेरे घर में ही रहती है ।' उदास जय कह रहा था ।

'क्या मतलब ?' दादाजी ने पूछा ।

तब जय की आँखों में आँसू भर आये । केले के पेड़ के नीचे बैठकर वह अपनी करुण कथा सुनाने लगा–'मेरे पिताजी ने दहेज पर ध्यान दिया, पर कन्या के रूप–गुण न देखे । महाकुरूप, एक आँख की, एक दाँत की हथिनी से मेरा विवाह रचा दिया । चलो यह भी हुआ । मैंने सोचा कि वास्तविकता शरीर की नहीं मन के व्यवहार की होती है । इसलिये मैं कुछ न बोला, पर क्या बताऊँ दादाजी मेरी पत्नी तो मन की भी बड़ी कुरूप है, बड़ी ही कर्कश है । धनी बाप की बेटी है, बड़ा अभिमान है उसे । मुझे तो अपने आगे तुच्छ समझती है । सारे दिन मुझसे काम कराती है । रूखा–सूखा खाना भी ठीक से नहीं खिलाती, मेरा घर क्या है, नरक है ।'

दादाजी सिर हिलाते हुए बीच में बोल पड़े–'हाँ बेटा ! यह तो सही है । गृहिणी से ही घर बनता है । अच्छी गृहिणी पाकर घर स्वर्ग बन जाता है । बुरी गृहिणी उसे नरक बना देती है ।'

कुछ रुककर महेन्द्र दादा कहने लगे–'मधु के साथ विवाह न करके तुमने एक बहुत ही अच्छा अवसर खो दिया । ऐसा रत्न तो तुम्हें ढूँढ़े भी न मिलेगा ।'

जय पश्चात्ताप से कहने लगा—'हाँ दादाजी ! तब तो मैं पिताजी के आगे कुछ न बोला था, पर अब सोचता हूँ कि बड़ों की भी हर बात हमें चुपचाप नहीं मान लेनी चाहिये । जो उचित है उसी को स्वीकार करना चाहिये । बड़े हैं इसलिये वह हर बात सही कहेंगे ऐसा नहीं है.....। अब तो मन करता है दादाजी कि पर्वत की ऊँची चोटी से कूदकर आत्महत्या कर लूँ—इसलिये मैं घर से निकला हूँ ।' बड़ी ही निराशा से वह कह रहा था ।

महेन्द्र दादा ने उसके सिर पर हाथ फिराया, फिर पीठ थपथपाते बोले—'देखो बेटा ! जो हो गया सो हो गया । गृहस्थ तो एक तपोवन है, इसमें साधना करनी होती है संयम की, सहिष्णुता की । घबराकर आत्महत्या करना कायरता है । तुम्हारी महानता तभी है जब तुम अपनी पत्नी को भी अपनी सेवा—सहिष्णुता और सद्‌व्यवहार से बदल दो । अपने को तो सभी सुधार लेते हैं । जो बुराई के रास्ते पर चलने वाले को भी सुधार देता है वही महान्‌ है । तुम इसके लिये प्रयास करो—निरन्तर प्रयास से ही सफलता मिला करती है ।

'सच ही कह रहे हैं आप दादा !' कहकर बड़े ही अन्यमनस्क भाव से जय उठ खड़ा हुआ अपने घर वापस लौटने के लिये ।



अदालत का चक्कर

तालाब के किनारे बिलसू नाम का एक बुड्‌ढा खरगोश रहा करता था । उसके पास दो छोटे—छोटे खेत थे, उनमें वह गाजर, मूली, शकरकन्द, टमाटर आदि लगाया करता था ।

एकबार बिलसू को पीलिया की बीमारी हो गयी । उसने बहुत—सी दवायें लीं, पर किसी से कोई लाभ न हुआ । रोग

प्रतिदिन बढ़ता ही गया और अन्त में बिलसू मृत्यु के निकट पहुँच गया । उसने अपने दोनों बेटों मनु–तनु को बुलाया और उनसे बोला–'देखो बच्चो ! मिल–जुलकर रहना यह कहते–कहते उसके प्राण–पखेरू उड़ गये ।'

तनु–मनु ने पिता की आज्ञा मानकर कुछ दिन तो साथ–साथ काम किया । कहीं खेत खराब न हो जाये, इस डर से वे पहले से भी दुगुनी मेहनत और ध्यान से काम किया करते थे । फल यह हुआ कि उनके खेतों में पहले से दुगुनी उपज भी हुई ।

उनके हरे–भरे खेत देखकर पड़ौसियों को बड़ी ईर्ष्या हुई । उन्होंने दोनों भाइयों में झगड़ा कराने की सोची ।

एक पड़ौसी तनु से बोला–'तुम छोटे हो न इसलिये तुमसे बहुत काम कराया जाता है । अरे इससे अच्छा तो अलग खेत लेकर रहो । क्यों मनु की डाँटफटकार सुनते हो ? क्यों उसके दबे में रहते हो ? स्वतंत्र रहने में जो सुख है वह किसी के बन्धन में कहाँ ?

दूसरे ने मनु से कहा–'देखो तनु ! कहने को तो तुम्हारा छोटा भाई है, पर वह हर जगह तुम्हारी बुराई करता रहता है । जहाँ भी जाता है तुम्हारे विरुद्ध विष घोलता है । क्यों न इसे छोटा वाला खेत देकर अलग कर दो ।'

इसी प्रकार विविध प्रकार से बार–बार पड़ौसी मनु और तनु को भड़काने लगे । न तो तनु ने, ना ही मनु ने यह सोचा कि वे पड़ौसियों की बातों में न आयें, मिल–जुलकर रहें । वे तो मन ही मन एक–दूसरे को अपना पक्का दुश्मन समझने लगे । दोनों एक–दूसरे के ऊपर झल्लाते । जब भी आपस में बोलते लड़ाई करने को उतारू हो जाते । उनकी यह स्थिति देखकर पड़ौसी मन ही मन खुश होते थे । भाई–भाई भी जब एक–दूसरे पर विश्वास नहीं करते, सन्तोषजनक व्यवहार नहीं करते तो वे आपस में शत्रु भी बन जाया ही करते हैं ।

एक दिन तनु–मनु ने आपस में खेतों का बँटवारा कर ही लिया । छोटा खेत तनु को मिला, बड़ा मनु ने अपने पास रखा । कुछ समय तो तनु ने इस बात पर जरा भी ध्यान न दिया । पर बाद में पड़ौसियों ने उसे फिर भड़काया–'ओह ! कर गया न तुम्हारा भाई चालाकी । खुद बड़ा खेत हड़प कर बैठ गया है ।

पड़ौसियों के भड़काने पर तनु एक दिन वनराज सिंह की सभा में चला गया । वहाँ जाकर मनु के विरुद्ध दावा ठोक दिया ।

अब मनु भी गुस्से में भर उठा । बोला–'यदि यह मुझसे ही आकर कह देता तो मैं खुद ही इसे बड़ा खेत दे देता, पर अब तो मैं भी मुकदमा ही लड़ूँगा । देखूँगा कैसे ले जाता है यह एक इंच भी जमीन ।

बार–बार मुकदमे की तारीख पड़ती । तनु–मनु दोनों ही सारा काम छोड़कर न्यायालय के चक्कर लगाते । फल यह होता कि वे अपने खेतों की भी पूरी देखभाल न कर पाते । मेहनत और देखभाल के अभाव में उनकी खेती भी सूखने लगी ।

उस जगह के नामी वकील थे तूफान और तेजवीर मेंढ़क । एक को तनु ने अपना वकील बनाया तो दूसरे को मनु ने । उनके पास जो कुछ धन था वकीलों की भेंट चढ़ गया । जब धन खर्च हो गया तो फीस चुकाने के लिये दोनों भाइयों को अपने–अपने खेत भी थोड़े–थोड़े करके बेचने पड़े ।

उनके मुकदमे में पूरे चार वर्ष लग गये । इस बीच दोनों के ही खेत बिक चुके थे । फैसले के अनुसार मनु के पास दो गज जमीन ज्यादा थी । वह दोनों को आधी–आधी बाँट लेनी थी, पर अब तो वह भी न थी ।

तनु–मनु को अब खाने के भी लाले पड़ गये । वे दोनों दूसरे के खेतों में सारा दिन घोर परिश्रम करते तब जाकर

कहीं शाम को रुखा-सूखा खाना मिल पाता, दोनों ही बड़े दुर्बल हो गये । अब वे दुःखी मन से सोचते हैं कि मुकदमे के चक्कर में पड़कर हमने अपना ही सर्वनाश कर लिया है । यदि आपस में सुलह कर लेते तो यह दिन न देखना पड़ता । हाय ! हमने दुर्बुद्धिवश पिता की बात न मानी । अब तो जीवन भर पछताना ही पड़ेगा । जो बड़ों के अनुभवों से कुछ भी सीखने की कोशिश नहीं करता, वह मूर्ख ही होता है, उसे ठोकर खानी ही पड़ती है ।

टीपू कैसे सुधरा

कक्षा के सारे बच्चे मन लगाकर पढ़ते, वे हर वर्ष उत्तीर्ण होकर अगली कक्षा में चले जाते । गुरुजी उन्हें प्यार करते, पर टीपू का मन पढ़ने में जरा भी न लगता । गुरुजी कक्षा में पढ़ा रहे होते तो उसका ध्यान उनकी बात से हट जाता । कभी घर की बातें सोचता तो कभी दूसरे बच्चों को तंग करने के तरीके । उसे खड़ा करके गुरुजी जब कुछ पूछना चाहते तो वह चुपचाप मुँह नीचा करके खड़ा हो जाता । परिणाम यह होता कि उसे बहुत डाँट पड़ती, रोज का यही क्रम बन गया था ।

इसमें सारी की सारी गलती टीपू की भी न थी । बात यह थी कि उसके माता-पिता घर पर उसकी पढ़ाई का ध्यान नहीं रखते थे । कभी भी उसे पढ़ाने के लिये नहीं बैठते थे । स्कूल में वह कैसा काम कर रहा है ? यह जानने की कोशिश नहीं करते थे । स्कूल में गुरुजी के पास इतना समय नहीं था कि अकेले वह टीपू को लेकर देर तक पढ़ाते । स्कूल में गुरुजी डाँटते और जब अनुत्तीर्ण हो जाता तो पिताजी मारते । इन सबका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे टीपू का मन पढ़ाई से हटता गया । उछल-कूद, मार-पीट और शरारत ही उसको ठीक लगने लगे ।

माँ की डाँट के कारण टीपू को स्कूल तो रोज जाना ही पड़ता था । वहाँ अपने साथियों को तंग किया करता था । जो पढ़ने में अच्छे होते थे उन्हें गुरुजी प्यार करते थे, उनकी तारीफ करते थे, पर टीपू उन लड़कों से बहुत चिढ़ता और ईर्ष्या भी करता था । आशीष, प्रणव और रायल ऐसे ही लड़के थे । एक बार टीपू ने आशीष की तारीफ से चिढ़कर उसका नया पैन चुपचाप उठा लिया । उसे जाकर वह बाग में रखे कूड़ेदान में फेंक आया । आशीष के रोने पर सभी लड़कों की तलाशी ली गयी, पर किसी के पास पैन हो तो मिले । दूसरे दिन सफाई करने वाले कर्मचारी ने ही गुरुजी को लाकर पैन दिया । गुरुजी समझ गये कि वह टीपू की ही करतूत है ।

प्रणव अपनी अर्द्धवार्षिक परीक्षाओं में बहुत ही अच्छे अंकों में उत्तीर्ण हुआ । गुरुजी इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने प्रणव को अपनी ओर से मिठाई खिलाने की बात कही । साथ ही टीपू की ओर मुँह करके बोले-'और एक यह है टीपू महान्, सभी विषय में जीरो मिला है जनाब को । शर्म आनी चाहिये तुम्हें टीपू-कुछ तो सीखो प्रणव से ।

बस फिर क्या था, टीपू यह सुनकर तो मन ही मन चिढ़ गया । 'मैं ही सिखाऊँगा इसे तो सबक' उसने सोचा । पर मुँह से वह कुछ नहीं बोला । उसी दिन प्रणव के पिताजी उसके साथ टीपू के घर आये । उन्होंने वहाँ बड़े गर्व से बताया कि उनका बेटा कितने अच्छे अंकों में उत्तीर्ण हुआ है और टापू बेटे तुम्हारे अंक कैसे आये ? उन्होंने टीपू की ओर देखकर पूछा ।

वह तो नालायक है, क्या पढ़ेगा-लिखेगा ? बड़ा होकर घास ही बेचेगा । यह स्कूल जाने लायक नहीं है । माता-पिता का नाम बदनाम करता है । यह तो बस इस योग्य है.....कहते हुए टीपू के पिताजी ने उसके गालों पर कसकर तमाचे लगाने शुरू कर दिये ।

'अरे–अरे यह क्या करते हैं आप ! बच्चा मार से नहीं, प्यार से ही सुधर सकता है । प्रणव के पिताजी ने कहा और बड़ी ही मुश्किल से टीपू के पिता को पिटाई करने से रोका ।

मार अपमान से तिलमिला उठा टीपू । पिताजी अकेले में उसकी पिटाई करते तो उसे इतना बुरा न लगता । अपने इस अपमान का कारण भी उसने प्रणव को ही समझा और दाँत पीसकर उससे बदला लेने का प्रण कर लिया ।

टीपू रात भर गुस्से से तिलमिलाता रहा । उसके शरारती दिमाग ने आव देखी न ताव, उसने स्कूल चलते समय चुपचाप एक पैना ब्लैड भी अपने बस्ते में रख लिया ।

स्कूल में जाकर उस दिन वह प्रणव के पास वाली कुर्सी पर ही बैठा, प्रणव की आँख बचाकर उसकी मेज की दरार में चुपचाप ही वह ब्लेड घुसा दिया । ब्लेड ऊपर को थोड़ा–सा निकला हुआ था ।

प्रणव ने आकर जैसे ही मेज पर हाथ रखा, वह चीख उठा । ब्लेड अन्दर तक उसके हाथ में घुस गया था । खून का फब्बारा बह उठा था । गुरुजी दौड़े हुए उसकी मेज तक आये । उन्होंने देखा कि मेज पर खून ही खून बिखरा हुआ है । 'अरे ! यह कैसे हुआ ?' आश्चर्य से उनके मुँह से निकला ।

प्रणव ने रोते हुए मेज की ओर इशारा कर दिया । मेज में लगे हुए ब्लेड को देखकर, भौंहें चढ़ाकर गुरुजी बोले–'किसने लगाया है यह ?'

अब तक सभी बच्चे प्रणव की मेज के आस–पास जुट आये थे । 'गुरुजी हमें नहीं मालूम ?' एक स्वर से वे सभी बोले ।

गुरुजी की निगाह पास खड़े टीपू पर गयी । मुझे नहीं मालूम उसने बड़े ही उपेक्षा भाव से कहा और दूसरी ओर मुँह

फिराकर खड़ा हो गया । गुरुजी ने उस समय उससे कुछ भी कहना ठीक न समझा । खून से लथपथ प्रणव को उन्होंने गोद में उठाया और चल पड़े उसकी मरहम पट्टी कराने ।

सभी बच्चे समझ गये थे कि यह करतूत टीपू की ही हो सकती है । आँखों ही आँखों में वे उसे धिक्कारने लगे । उसके डर से कोई कह तो कुछ पा ही नहीं रहा था ।

गुरुजी प्रणव को लेकर वापस आये तो छुट्टी का समय हो चुका था । 'आप सभी जा सकते हैं ।' उन्होंने बच्चों से कहा ।

टीपू की ओर देखकर उन्होंने कहा-'और हाँ टीपू ! तुम जरा-सी देर के लिये रुक जाना ।'

सारे बच्चे जा चुके थे । अब टीपू गरदन झुकाये गुरुजी के सामने खड़ा था । इतनी देर से उसे अपने ऊपर बड़ी ग्लानि हो रही थी । प्रणव के इतनी अधिक चोट लग जायेगी, यह तो सोचा भी न था ।

गुरुजी ने टीपू की पिटाई करने के लिये हाथ आगे बढ़ाया । सहसा प्रणव बीच में आ गया । 'गुरुजी मत मारिये इसे ।' कल इसके पिताजी ने भी इसकी पिटाई की है ।

'क्यों ।' गुरुजी पूछ रहे थे ।

'यह पढ़ता नहीं है, शरारती है न इसलिये इसके माता-पिता इसे बहुत-मारते हैं ।' प्रणव ने बताया ।

यह सुनकर गुरुजी का हाथ उठा का उठा रह गया । पल भर में ही वे समझ गये कि इस बालक को सुधारने के लिये प्यार की जरूरत है । वे सोच रहे थे कि बालक स्वयं में बुरा नहीं होता, वह जन्म से भी बुरा नहीं होता, परिस्थितियों से वैसा बन जाता है । यदि अभिभावक और शिक्षक बालक को सुधार नहीं पाते तो यह बच्चे की गलती से अधिक उनकी अपनी ही असफलता है ।

प्रणव का व्यवहार देखकर टीपू का बाल–मन पिघल उठा । 'ओह ! मैं कितना नीच हूँ और एक यह है जो बुरा करने वाले के साथ भी भलाई कर रहा है । अच्छा है गुरुजी मुझे खूब मारें, मैं हूँ भी इसी लायक ।' अपने आपको वह धिक्कार रहा था ।

तभी उसे अनुभव हुआ कि गुरुजी उसके सिर पर हाथ फिराते हुए कह रहे थे–'टीपू बेटे ! मैं बहुत दिनों से तुम से कुछ कहना चाह रहा था । तुम कभी कुछ सीखने की कोशिश नहीं करते । ध्यान रखो ! अनजान होना उतनी लज्जा की बात नहीं है, जितनी कि सीखने के लिये तैयार न होना । तुम कुछ जानने की, पढ़ने की कोशिश ही नहीं करोगे तो फिर कैसे अच्छे बनोगे ? क्यों तुम्हें सब प्यार करेंगे ? जो कुछ सीखना नहीं चाहता, अपने आपको सुधारना नहीं चाहता उसे सभी दुत्कारते हैं । बड़े होकर भी उसे अपमान मिलता है । हम सब तुमसे बड़े हैं, जो कुछ कहते हैं तुम्हारी भलाई के लिये, तुम्हें अच्छा बनाने के लिये । तुम हमारी बात मानकर चलो फिर देखोगे कि सभी तुम्हें कितना चाहते हैं ।

झर–झर–झर टीपू की आँखों से आँसू बहने लगे । वह गुरुजी के पैरों से लिपट गया । 'मैं अब किसी का बुरा नहीं करूँगा । बड़ों की बात मानूँगा ।' रोते–रोते जैसे–तैसे वह बोला ।

गुरुजी ने आगे बढ़कर उसे अपने गले से लगा लिया और रूमाल से उसके आँसू पोंछे ।

उस दिन से एकाएक ही टीपू के व्यवहार में परिवर्तन आ गया है । उसके माता–पिता अभी भी आश्चर्य करते हैं कि वह अचानक कैसे बदल गया ? कक्षा के सभी बच्चे अब उसे प्यार से 'टीपू सुल्तान' कहकर पुकारते हैं । टीपू को भी उतनी खुशी कभी नहीं मिली जितनी कि अब मिलती है । ●

अपनी सहायता आप करें

उज्जैन में महाकालेश्वर का एक बड़ा प्रसिद्ध मन्दिर है । इस मन्दिर में बिल बनाकर चींटियों का समूह रहा करता था । सुबह-शाम जैसे ही आरती का घण्टा बजता सारी चींटियाँ अपने बिलों से निकल पड़तीं । आरती के समय वे दोनों हाथ जोड़कर, आँखें बन्द करके बड़े ही भक्तिभाव से भगवान् का ध्यान करतीं । आरती के समाप्त होने पर भक्तगण और पुजारी के चले जाने पर सारी चींटियाँ प्रसाद पर टूट पड़तीं । उसे वे जी भरकर खातीं और जो शेष बचता उसे अपने बच्चों के लिये, भविष्य के लिये उठाकर ले आतीं ।

मन्दिर के सात्विक वातावरण का प्रभाव रानी चींटी पर पड़ा । वह भगवान् का दिन-रात भजन करने लगी । बात यहीं तक सीमित रहती तब भी ठीक थी । रानी चींटी एक गूढ़ मान्यता में फँस गयी कि काम छोड़कर भगवान का भजन करने मात्र से ही सारे काम पूरे हो जायेंगे । भगवान् प्रसन्न होकर भक्तगणों की मनोकामनायें स्वयं पूरी कर देंगे ।

रानी चींटी का प्रभाव उसके दल पर भी पड़ा । परिणाम यह हुआ कि अधिकतर चींटियाँ कामचोर बन गयीं । काम से अधिक से अधिक बचने की आदत पड़ गयी । किसी को आते देखतीं तो झट दोनों पैर पर खड़ी होकर आँखें बन्द करके 'शिव-शिव' जपने लगतीं । आने वाला अब भला क्या करता, उन्हें देखकर वह चुपचाप चला जाता था ।

रानी चींटी को तो अपने समूह को देखने-भालने की तनिक भी फुरसत न थी । 'सब भगवान करेंगे' बस बात-बात में वह यही कह दिया करती और काम से अपना बचाव कर लेती । परन्तु मन्त्री चींटी को यह सब अच्छा न लगता था ।

उसने कई बार कहा भी–'रानीजी ! दिनभर खाली बैठे जप करने से भगवान् प्रसन्न नहीं होता । भगवान् प्रसन्न होते हैं, सद्विचारों से, परोपकार से, उदारता से । पूजा–उपासना तो प्रतिदिन कुछ समय इसलिये करनी चाहिये जिससे हमारा मन पवित्र रहे और विचार सात्विक बनें । शेष समय हम इस संसार को सुन्दर बनाने में लगायें–यही भगवान् की सबसे बड़ी सेवा है ।

'ओह ! नास्तिक हैं आप जो ऐसी बातें कहती हैं । चुप हो जाइये, ज्यादा कुछ कहेंगीं तो भगवान् दण्ड देंगे ।' रानी चींटी ने कहा । मन्त्री को चुप होना ही पड़ा ।

एक बार दक्षिण देश से चींटियों की बड़ी सेना घूमते–घूमते उज्जैन आयी । वह उसी मन्दिर में ही जा पहुँची । महाकालेश्वर का मन्दिर उन सबको बड़ा ही पसन्द आया । दल के नेता ने सभी से सलाह की और यह बात तय कर ली गयी कि वे सब अब वहीं रहेंगी ।

इस बीच उनका परिचय रानी चींटी से भी हो चुका था । रानी की अकर्मण्यता और अन्धविश्वास से भी वे अच्छी तरह परिचित हो चुकी थीं । एक दिन जब दक्षिण देश की सारी चींटियों की सभा जुड़ी थी तभी उनको गुप्तचर ने बतलाया कि पूरे मन्दिर में रहने के लिये सबसे अच्छा स्थान वह है जहाँ रानी चींटी रहती है ।

'चलो हम उसके बिल पर धावा बोल कर खदेड़ दें उसे ।' एक चींटी बोली । सभी ने इस बात का समर्थन किया । उन्हें पता था कि आलसी और अन्धविश्वासी को हराना बड़ा सरल होता है । क्योंकि वह भाग्य के भरोसे हाथ पर हाथ रखकर बैठा रहेगा और भगवान् को दोष देता रहेगा ।

दूसरे ही दिन उन्होंने रानी के बिल पर हमला कर

दिया । इस अचानक के हमले से रानी हड़बड़ा उठी । कुछ चींटियों को युद्ध के लिये भेज दिया । वह स्वयं काफी सारी सेना लेकर पूजा करने बैठ गयी और सभी शिव-शिव का जप करने लगीं । रानी को पूरा विश्वास था कि शीघ्र प्रसन्न होने वाले भगवान् शंकर युद्ध में स्वयं आकर हमारी रक्षा करेंगे ।

तभी उसकी गुप्तचर चींटियाँ दौड़ती-दौड़ती आयीं । उन्होंने बतलाया कि युद्ध में भेजी गयीं उनकी सारी की सारी चींटियाँ मर चुकी हैं । अब इस समय दक्षिण देश की पूरी सेना बिल में घुसी चली आ रही है ।

रानी की निगाह सहसा सामने चली आ रही अपनी मन्त्री चींटी पर पड़ी । गुस्से में वह उसी पर बिफर पड़ी-'यह सारी ही तुम्हारी बुलाई हुई हैं । तुम उस दिन पूजा की निन्दा कर रही थीं, भगवान् ने उससे नाराज होकर ही दण्ड दिया है ।'

यह सुनकर मन्त्री चींटी ने अपना सिर ठोक लिया । वह युद्ध भूमि से अपनी चींटियों की लगातार हार और मृत्यु दे खकर आ रही थी और रानीजी अभी बिना पुरुषार्थ किये पड़ी थीं । पर स्थिति की नजाकत को देखते हुए उसने अपने को सँभाल लिया और कुछ विचार करके बोली-'रानीजी ! आप ऐसा कहें । मैं तो स्वयं युद्ध भूमि में बैठी शिव-शिव का जप कर रही थी । जिससे शत्रु सेना हार जाये, पर जब मैंने देखा कि हमारी सारी चींटियाँ मारी गयीं तो मैं दौड़ी-दौड़ी भगवान् के पास पहुँची । रो-रोकर मैंने उनसे सारी बातें कहीं ।

'तो भगवान् स्वयं आ रहे हैं न हमारी रक्षा करने ।' रानी बोली । उन्हें ऐसा लग रहा था कि अब उसकी साधना सार्थक होने ही वाली है ।

'जी नहीं ! भगवान् ने मुझसे यह कहा कि आप अपनी पूरी की पूरी सेना के साथ तुरन्त युद्ध भूमि में दौड़ पड़ें । वहाँ

पूरी शक्ति से युद्ध करें तभी मैं उनकी सहायता करूँगा और विजय दिलाऊँगा । मेरी भक्त हैं तो मेरा अनुकरण करें । युद्ध क्षेत्र में मैं भी भयंकर रूप धारण कर लेता हूँ ।' यदि वे ऐसा नहीं करेंगी तो सभी को कुपित होकर भस्म कर दूँगा ।'

यह सुनकर रानी डर कर अपनी पूरी सेना के साथ युद्ध भूमि की ओर भागी । वहाँ सभी ने पूरी वीरता से युद्ध किया । परिणाम यह हुआ कि दक्षिण देश की चींटियाँ अपने प्राणों के भय से सिर पर पैर रखकर वहाँ से भाग छूटीं । विजय के गर्व से झूमती रानी अपनी सेना सहित वापस आ गयी ।

इस महान् विजय की खुशी में शाम को एक विशाल प्रीतिभोज का आयोजन किया गया । सभी चींटियाँ गा रही थीं, नाच रही थीं और प्रसन्न होकर मधुर मिष्ठान्न खा रही थीं । तभी मन्त्री चींटी ने सभी को सच्ची बात कह दी कि किस प्रकार उसने भगवान् का नाम लेकर झूठ बोल दिया था । सभी चींटियाँ एक–दूसरे का मुँह देखने लगीं । मन्त्री चींटी कहने लगी–'हाँ बहिनो ! भगवान् केवल उन्हीं की सहायता किया करता है जो स्वयं अपनी सहायता आप करने के लिये तत्पर रहते हैं । हाथ पर हाथ रखकर बैठने वाले का भाग्य सो जाता है । पुरुषार्थी का भाग्य सदैव चमक उठता है ।

रानी चींटी की बात समझ में आ रही थी । उसने तालियाँ बजाकर इस बात का समर्थन किया । 'आज की विजय का सारा श्रेय इनको ही है ।' ऐसा कहकर रानी ने अपनी मन्त्री की बहुत ही प्रशंसा की और उसे अनेकों उपहार भी दिये ।

अब किसी का यह साहस नहीं होता कि रानी चींटी के बिल की ओर आँख उठाकर देख सके । रानी चींटी इतनी पराक्रमी भी होगी–यह तो उन्होंने कभी सोचा तक न था ।



गुडिया ने स्नान किया

यों तो सुरभि के पिताजी उसे नये-नये खिलौने लाकर देते ही रहते थे, पर उस दिन जब उन्होंने उसके हाथ में एक प्यारी गुड़िया पकड़ाई तो सुरभि खुशी से नाच उठी । इतनी सुन्दर गुड़िया तो उसकी सहेलियों आभा, ऋचा, इन्दु, शैव्या, शैफाली में से किसी के पास भी न थी । उनमें में से किसी ने शायद कभी वैसी गुड़िया देखी भी न हो । उसकी आँखों की पुतली हिलती थीं तो लगता था कि सचमुच हिल रही हो । यही नहीं वरन् दो-चार शब्द भी बोलती थी । सच में जीती जागती थी वह गुड़िया ।

सुरभि तो उस गुड़िया को पाकर अपने आपको भूल बैठी थी । न नहाने का ध्यान रहा, न सोने का । माँ डाँट-डाँटकर उससे काम कराती । सोती तो गुड़िया को पलंग पर लेकर । बाद में कहीं टूट न जाय, इस डर से माँ ही उसे उठाकर रख देती । सुरभि रात भर सपने में भी गुड़िया के साथ रहती ।

गुड़िया का प्यारा-सा नाम भी सुरभि ने रखा- 'लालपरी । लालपरी के लिये जिद करके उसने माँ से ढेरों कपड़े सिलवाये । वह कभी उसकी चोटी बना देती तो कभी जूड़ा । अपने छोटे भाई सौरभ को तो वह उसे छूने भी न देती । वह बेचारा ललचाया-सा देखता रहता, पर क्या मजाल कि सुरभि उसे हाथ भी कभी लगाने दे ।

तीन-चार दिन ऐसे निकल गये । सुरभि ने सहेलियों के यहाँ जाना भी छोड़ दिया । पहले तो वह रोज ही उनके यहाँ जाया करती थी और सभी सहेलियाँ मिलकर खेला करती थीं । सहेलियों ने सोचा कहीं सुरभि बीमार न पड़ गयी हो,

अतएव वे सभी इकट्ठी होकर उसके घर आयीं ।

'सुरभि तुम चार दिन से खेलने क्यों नहीं आ रही हो ?' ऋचा पूछने लगी ।

'ओह ! अब मुझे फुरसत ही कहाँ मिलती है ? सारा दिन तो इस गुड़िया के काम में निकल जाता है ।' सुरभि इतराकर हाथ में लगी गुड़िया को दिखाकर बोली ।

गुड़िया ने जब पुतलियाँ हिलायीं तो सभी सहेलियाँ मुग्ध हो उठीं । 'अरे ! यह गुड़िया तो पलक भी झपकाती है ।' आभा आश्चर्य से बोली ।

'हाँ ! और यह बोलती भी है । सुनाऊँ तुम्हें इसकी बोली ।'

कहकर सुरभि ने बटन दबाया और गुड़िया ने बोलना आरंभ कर दिया । उन्होंने सपने में भी न सोचा था कि गुड़िया बोल भी सकती है । वे सभी सुनकर दंग रह गयीं ।

'देखें जरा तुम्हारी गुड़िया ! वास्तव में बड़ी ही अद्भुत है यह तो ।' इन्दु ने उसे लेने के लिये हाथ बढ़ाया ।

'ओह ! मेरे पापा के एक दोस्त अमेरिका से लाये हैं । मैं तुम लोगों को इसे छूने भी नहीं दे सकती, खराब हो गयी तो ।' मुँह बिचकाकर सुरभि बोली ।

सभी को सुनकर बुरा लगा । अब तक सभी सहेलियाँ एक-दूसरे की चीजों से खेलती आयी थीं । कभी किसी ने अपनी चीज को दिखाने के लिये मना तक न किया था ।

'हमने तो सुरभि तुम्हें कभी कोई चीज देने से मना तो नहीं किया ।' शैव्या बोली ।

'क्या तुम कभी आभा के बेडमिन्टन से नहीं खेलीं ? ऋचा के चाइनीज चेकर से नहीं खेलतीं ? मेरे यहाँ टेबिल टेनिस नहीं खेलतीं ? शैव्या के यहाँ तरण ताल में नहाती नहीं ?' शेफाली कह रही थी ।

'वह बात बीत चुकी । अब मैं तुम्हारी किसी भी चीज से हाथ तक कभी न लगाऊँगी ।' मुँह फुलाकर और आँखें नचाकर सुरभि बोली ।,

आभा जो सबसे कुछ बड़ी और समझदार थी । बोली—'तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये । सुरभि जरा–सा छू भर लेने दोगी तो क्या बिगड़ जायेगा ? आखिर हम इसे फोड़ तो देंगे नहीं ।'

पर सुरभि बोली तक नहीं । 'छोड़ो भी बड़ी ही नीच और स्वार्थी है यह तो—चलो इसके यहाँ से ।' शेफाली को गुस्सा आ रहा था ।

'क्या कहा ? मैं नीच हूँ, स्वार्थी हूँ ।' गुस्से से आँख फाड़कर चीखने लगी सुरभि ।

'हाँ–हाँ ! ऐसी ही हो तुम । जो दूसरों की चीज ले सकता है, पर दे नहीं सकता वह नीच नहीं, स्वार्थी नहीं तो और क्या है ? मेरे पापा कहते हैं—ऐसे लोग हमेशा दुःख पाते हैं ।' शेफाली ने भी तुनक कर कहा और सारी की सारी अपनी सहेलियों को लेकर वह चली गयी ।

सुरभि का मन सहेलियों के उलाहनों से बड़ा दुःखी हुआ । गुड़िया को लेकर कुर्सी पर ही सो गयी । सौरभ ने देखा यह अच्छा मौका है जीजी की गुड़िया से खेलने का । उसने धीरे से जाकर गुड़िया पकड़ ली, पर सहसा ही सुरभि की आँख खुल गयी । जब उसने सौरभ के हाथ में गुड़िया देखी तो जोर से एक तमाचा उसके गाल पर जड़ दिया । सौरभ दर्द से चीख कर रो उठा । दूसरे ही क्षण उसने मेज से उठाकर पूरी की पूरी काली स्याही की दवात ही गुड़िया के ऊपर उड़ेल दी । फिर उसे जमीन पर फेंककर तेजी से भाग गया ।

सुरभि ने जल्दी से जाकर जमीन पर से गुड़िया उठाई, पर उसे देखते ही वह सन्न रह गयी । अब लालपरी काली

भूतनी लग रही थी । उसका गोरा शरीर, सफेद और लाल मुख सभी आबनूस जैसे काले रंग के हो गये ।

सौरभ ने पहले ही जाकर माँ से उसकी शिकायत कर दी । इसलिये उससे भी अधिक कुछ न कह पायीं । कमरे में जाकर बस चुपचाप पड़ी-पड़ी रोती ही रही । दो दिन उसने ठीक से खाना भी नहीं खाया ।

तीसरे दिन उसकी सहेलियाँ आभा और ऋचा फिर आ गयीं । 'अरे यह क्या ?' बड़ी मेज के कोने में उपेक्षित-सी पड़ी काली-कलूटी गुड़िया को देखकर वे बोलीं ।

सुरभि ने आँसू बहाते हुए सारी घटना सुना दी ।

'तो इसमें क्या हुआ ? इसे अच्छी तरह रगड़-रगड़कर नहला दो । सारी स्याही छूट जायेगी ।' आभा ने सलाह दी ।

'ओह ! इतनी छोटी-सी बात मेरे दिमाग में नहीं आयी । कहते हुए सुरभि तेजी से दौड़ी । छोटे भाई का नहाने का टब, साबुन और पानी लेकर तुरन्त ही लौट आयी । गुड़िया के शरीर पर मलमलकर साबुन लगाया, उसे खूब रगड़ा, पर स्याही थी कि छूटने का नाम ही नहीं ले रही थी ।

'चलो इसे थोड़ी देर पानी में पड़ा रहने देते हैं । कुछ न कुछ तो स्याही छूटेगी ही ।' सुरभि बोली और टब में उसने गुड़िया को डाल दिया ।

पाँच मिनट बाद लालपरी को जब निकाला गया तो वह और भी बदरंग-भद्दी हो गयी थी । जगह-जगह काले-सफेद धब्बे पड़ गये थे, गर्दन चिपक गयी थी और हाथ-पैर की कई उँगलियाँ ही गायब हो गयी थीं । उसकी यह कुरूपता देखकर सुरभि का जी रो उठा । सुरभि को काटो तो खून नहीं । क्या मुँह दिखायेगी अब वह किसी को ? इसी गुड़िया के कारण ही तो उसने भाई से झगड़ा किया था । इसी गुड़िया के

कारण तो उसने कभी न लड़ने वाली अपनी पक्की सहेलियों को नाराज कर दिया था ।

सुरभि अधमरी–सी चुपचाप जाकर पलंग पर लेट गयी । सहेलियाँ उसे मना–मनाकर हार गयीं, पर वह एक शब्द नहीं बोली, आखिर वे अपने घर चली गयीं ।

शाम को जब पिताजी आये तो सुरभि उनके पैरों से लिपटकर फफक–फफक रो उठी ।

'अरे ! क्या बात है ?' उन्होंने घबराकर पूछा, पर सुरभि का गला इतना रुँध गया कि वह एक शब्द भी न बोल पाई । तब सौरभ ने ही गुड़िया लाकर पिताजी को सारी बातें समझायीं ।

पिताजी ने सुरभि को गोद में बैठाकर आँसू पोंछते हुए कहा–'बेटी ! अगर तुम भाई को पहले ही खेलने को दे देतीं, तो क्यों वह खराब करता ? वे बच्चे जो अपनी चीज दूसरों को छूने नहीं देते, देखने नहीं देते, अच्छे नहीं कहे जाते । बड़े होकर भी यदि ऐसा करते हैं, तो सभी उनसे दूर रहते हैं । हम सब मिलकर ही रहें, मिलकर खायें, मिलकर खेलें तभी जीवन में सुख–शान्ति मिलती है । परिवार में, समाज में रहकर हम दूसरों की सहायता के बिना आगे नहीं बढ़ सकते । इसलिये यह हमारा कर्तव्य हो जाता है कि अपने सुख से औरों को भी हम सुखी होने दें । यदि गुड़िया के खराब होने से इतना–सा सबक तुम ले सकीं तो जीवन की बड़ी–'बड़ी हानियों से बच जाओगी ।

सुरभि चुपचाप मौन हो पिताजी की बातें सुन रही थी ।

'रानी बिटिया मानोगी न हमारी बात ।' पिताजी ने उसका आँसुओं से भरा मुख ऊपर उठाकर पूछा । सुरभि ने कुछ लजाकर आँखें और सिर हिलाकर स्वीकृति दी और फिर पिताजी के हाथों में अपना मुँह छिपा लिया ।

अच्छे बच्चे

'अब तुम सो जाओ रोहित ।' माँ ने नींद भरी आँखों से रोहित से कहा ।

पर रोहित को नींद कहाँ आने वाली थी । रह–रहकर उसका ध्यान दरवाजे की ओर जा रहा था । वह सोच रहा था कि कब माँ को नींद आये और कब दरवाजा खोलकर वह अमिताभ के यहाँ पर खेलने भाग जाय ।

माँ रोहित की इस शरारत को समझ रही थीं । अतएव बोलीं–'देखो ! इस कड़ी गर्मी में बाहर लू में खेलने जाओगे तो निश्चित ही बीमार पड़ जाओगे । कल नानी के यहाँ भी चलना है । बीमार पड़ गये तो यहीं छोड़ जाऊँगी तुम्हें ।'

रोहित उस समय तो कुछ न बोला, पर जैसे ही माँ की आँख लगी वह तुरन्त भाग छूटा । दिन में नींद उसे आती नहीं थी । जाने से पहले एक बार उसने सोचा भी कि माँ नाराज होंगीं, पर दूसरे ही पल उसके मन ने तर्क दिया कि माँ तो हर काम में टोकती ही रहती हैं ।

अमिताभ के यहाँ पहुँच कर रोहित ने उसे कमरे से बाहर निकाला । दोनों बाहर बाग में आकर खेलने लगे । गर्म–गर्म लू चल रही थीं । कड़ी धूप पड़ रही थी, पर दोनों को भला इसकी परवाह भी क्या ? कभी वे तितलियों के पीछे दौड़ते तो कभी बगीचे में पड़े कुत्तों को छेड़ते । कभी कोई अधपका फल तोड़कर खाने लगते तो कभी एक–दूसरे के पीछे दौड़कर भागम–भाग का खेल खेलते ।

जब दोपहरी बीत चली तो रोहित को घर जाने की याद आयी । उसके सिर में हल्का–हल्का दर्द भी होने लगा था । वह चुपचाप दबे पाँव घर में घुसा और कमरे में जाकर लेट

गया । दर्द था कि बढ़ता ही जा रहा था, पर उसे डर था कि वह माँ को बतायेगा तो वे नाराज होंगी । दर्द जब बहुत बढ़ गया तो रोहित कराहने लगा । उसकी कराहें सुनकर माँ दौड़ी-दौड़ी आयीं ।

'क्या बात है ?' रोहित की माँ ने पूछा ।

'सिर में बहुत दर्द हो रहा है ।' वह सहमा-सा बोला ।

माँ ने उसके माथे पर हाथ रखा तो पाया कि तप रहा है वह । 'कहाँ गये थे तुम ?' उन्होंने कड़ाई से पूछा ।

'अमिताभ के यहाँ ।' कहकर रोहित अचानक रो पड़ा । उसका दर्द और बेचैनी हर पल बढ़ते जा रहे थे ।

'और वहाँ दोपहरी भर अमिताभ के बगीचे में खेले होंगे न ।' माँ पूछ रही थी ।

रोहित ने रोते-रोते सिर हिला दिया । माँ उस समय तो कुछ न बोलीं । चुपचाप से थर्मामीटर लायीं । उसका बुखार नापा १०५ डिग्री था । उन्होंने बड़े लड़के से बर्फ मंगायी, उसकी पट्टी भिगो-भिगोकर रोहित के सिर पर रखीं । दो घण्टे बाद जाकर कहीं बुखार कुछ हल्का पड़ा ।

शाम को जब पापा आये तो वे रोहित को डाक्टर के यहाँ ले गये । 'लू लगने से बुखार आ गया है ।' ऐसा डाक्टर का कहना था । रोहित को आठ-दस दिन तक कड़वी-कड़वी गोलीं-कैप्सूल खाने पड़े । लस्सी, शर्बत, आइसक्रीम सब बन्द हुए सो अलग । अपने भाई-बहिनों को वह ये सब चीजें खाते हुए देखता तो उसका मन ललचाने लगता ।

रोहित के बीमार पड़ने के कारण उस वर्ष गर्मियों की छुट्टियों में नानी के यहाँ भी नहीं जा पाये । सभी भाई-बहिन इसके लिये रोहित को ही दोष देते । कहते-'यह माँ का कहना मानता तो न बीमार पड़ता और न बाहर जाने

का कारण बनता ।

एक दिन उनकी इस बात पर रोहित तुनककर बोला—'ओह ! बीमार पड़ गया तो इसमें मेरा क्या दोष ?'

माँ बोली—'देखो रोहित ! अभी तक तो तुम बीमार थे । इसलिये मैं कुछ नहीं बोली । मैं भी बहुत दिनों से तुमसे कुछ कहना चाहती थी । सच बात तो यह है कि तुम अपने आगे किसी की सुनते ही नहीं, इसलिये बार-बार ठोकर खाते हो । तुम सोचते हो कि मैं बात-बात में बेकार ही टोका करती हूँ । पर बेटे ! माता-पिता बड़े होते हैं, वे समझदार होते हैं । जो बच्चे उनका कहना नहीं मानते हैं वह अच्छे बनते हैं, दुःख नहीं उठाते । जो गन्दे बच्चे होते हैं वह माता-पिता की बात नहीं मानते और कठिनाई में पड़ते जाते हैं । अब तुम्हीं बताओ कि उस दिन कहना मानते, लू में खेलने नहीं जाते तो क्यों तुम्हें बुखार आता ? सभी नानी के यहाँ नरौरा चलते । सुबह-शाम मजे में गंगा नहाते-घूमते ।

रोहित की समझ में अब अपनी गलती आ रही थी । माँ के आँचल में मुँह छिपाकर वह बोला—'माँ ! मैं तुम्हारी हर बात मानूँगा । कभी जिद नहीं करूँगा । फिर तो मैं अच्छा बन जाऊँगा न ! फिर तो तुम मुझे खूब सारा प्यार करोगी न ?

'अपनी बात याद रखना ।' मुस्कराते हुए माँ बोली । रोहित भी हँसते हुए बोला— 'अब कभी जिद करूँ तो बतलाना ।'



जंगल के फल

पुराने समय की बात है । अमरावती नगरी में एक धनी वणिक रहता था । एक बार उनका पुत्र रत्नगुप्त देश–विदेश में व्यापार करने घर से निकला । चलते समय रत्नगुप्त की माँ उसे समझाने लगी–'बेटा ! तुम मित्रों के साथ व्यापार करने जा तो रहे हो, पर रास्ते में सँभल कर रहना । विविध देशों में न जाने कैसी परिस्थितियाँ सामने आयेंगी ? कोई बुजुर्ग तुम्हारे साथ होता तो अच्छा रहता, पर खैर मेरा तुम्हारे लिये यही उपदेश है कि रास्ते में सदा आँख खोलकर रहना और चलना । चीजों को अच्छी तरह से ही देखना और समझना ।

रत्नगुप्त ने माँ को वैसा ही सब करने का आश्वासन दिया । माता–पिता के पैर छूकर उनका आशीर्वाद लेकर वह यात्रा के लिये निकल पड़ा ।

रत्नगुप्त और उसके साथियों ने अनेकों देशों में जाकर व्यापार किया और बहुत–सा धन कमाया । माँ की सीख पर ध्यान देने के कारण कई जगह उसकी और उसके साथियों की रक्षा हुई । अन्त में वे सभी घर की ओर लौटे । उनके रास्ते में बहुत बड़ा जंगल पड़ा । कई दिनों तक लगातार उस जंगल में चलते–चलते रत्नगुप्त और उसके साथी थक गये । यहाँ तक कि उनके पास का खाने–पीने का सामान भी खत्म हो गया । भूख से विकल हो वे आगे बढ़ने लगे । कई दिनों से खाना न मिलने से सभी के प्राण कुलबुला रहे थे । जैसे–तैसे जाकर उस जंगल का अन्त हुआ । जंगल के किनारे जाकर वे बैठ गये ।

पास में ही भीलों का एक गाँव दिखाई दे रहा था । रत्नगुप्त का मित्र प्रवरगुप्त बोला–'पता नहीं भील हमारा स्वागत करेंगे या गाँव में घुसने से मना कर देंगे ।

'भीलों के गाँव में न जाने की बात तो बाद में सोची जाये । पहले तो कुछ खाने का जुगाड़ लगाया जाये ।' धनगुप्त कहने लगा ।

सहसा सभी की निगाह सामने खड़े जामुन के पेड़ पर गयी । काले-काले रसीले जामुनों से वह लदा खड़ा था । उसे देखकर सभी की भूख भड़क उठी । धनगुप्त उठा और ढेर सारे जामुन तोड़कर लाया । सभी मिलकर खाने ही वाले थे कि एकाएक रत्नगुप्त, जो अभी कुछ सोच-सा रहा था । चिल्ला उठा-'मित्रो ! इन जामुनों को छूना भी नहीं अन्यथा बुरा परिणाम होगा ।'

उसकी बातें सुनकर सभी आश्चर्य चकित रह गये । अच्छी-खासी गोल-मटोल जामुनें, जोरों से लगती भूख, फिर भला रत्नगुप्त उन्हें खाने को क्यों मना कर रहा है ? सभी उसकी ओर ऐसे देखने लगे जैसे वह कोई बहुत बुरी बात कह रहा हो ।

'तुम्हें मेरी बात बुरी लग रही है न । यह फल विषैले हैं, कहीं ऐसा न हो कि हम उन्हें खाकर सो जायें ।' रत्नगुप्त बोला ।

'पर तुम्हें यह पता कैसे लगा ?' प्रवरगुप्त पूछने लगा ।

'देखो ! इस पेड़ पर असंख्यों चिड़ियाँ बैठी हैं, पर किसी ने भी इन फलों को चखा तक नहीं है । सभी के सभी ज्यों के त्यों लगे हैं । क्या यह संभव है कि फल खाने योग्य हों और पक्षी उन्हें चखें तक नहीं, नष्ट न करें ? और फिर पास ही भीलों का गाँव है । यदि ये फल अच्छे होते तो भील ही आकर सबके सब तोड़कर ले जाते ।' रत्नगुप्त बोला ।

'क्या तुम अपनी बात सिद्ध कर सकते हो ?' प्रवरगुप्त कहने लगा ।

रत्नगुप्त ने इधर-उधर निगाह दौड़ाई । फिर सहसा ही उसने प्रवरगुप्त के पिंजड़े में रहने वाले तोते को निकाला और

उसके आगे एक जामुन रख दी । तोते ने उसे बड़े प्रेम से खाया । परन्तु खाने के कुछ समय बाद ही गर्दन एक ओर लुढ़क गयी और प्राण–पखेरू उड़ गये ।

सभी मित्र रत्नगुप्त की ओर प्रशंसा भरी नजरों से देखकर कहने लगे–'मित्र ! आज तुम्हारी दूरदर्शिता ने हम सबके प्राण बचाये हैं ।'

'वास्तव में वह जामुन जैसा देखने में लगता है, पर वह जामुन है नहीं । रास्ते में मिलने वाले सुन्दर–सुन्दर पेड़–पौधों और फलों में न जाने कौन–सा विषैला निकल आये ? इसलिये बिना कोई परीक्षा किये किसी फल को भी चखना उचित नहीं है ।' रत्नगुप्त बोला ।

इस प्रकार माँ की शिक्षा पर चलने से रत्नगुप्त ने सबकी रक्षा कर ली । भूख की परवाह न करके सभी मित्र खुशी–खुशी वहाँ से उठकर आगे बढ़ गये ।

तोता चला शहद खाने

स्वस्ति और ऋचा के घर के सामने एक बहुत बड़ा बाग था । वहाँ आम और अनार के पेड़ लगे हुए थे । मार्च का महीना आया, आम के वृक्ष पीले–सुनहरे बौरों से लद गये । अनार के पेड़ भी लाल फूलों से सज उठे । धीरे–धीरे फूल बड़े होने लगे और उनमें फल आने लगे । उनकी खुशबू से आकर्षित होकर बहुत से भौंरे, मधुमक्खियाँ तितलियाँ, तोते, कोयल, आदि उस बाग में आने शुरू हो गये ।

जीतू नाम के एक तोते को अनार का पेड़ बड़ा ही अच्छा लगता था । वह सारे दिन उस पर बैठा रहता । कच्चे अनारों को कुतर–कुतर कर गिराता रहता । उसी पेड़ पर चन्दा नाम की एक तितली भी प्रायः आती थी । वह फूल–फूल पर मँडराती, उसका रस चूसती । धीरे–धीरे जीतू और चन्दा की मित्रता हो गयी ।

एक दिन चन्दा थककर पेड़ पर बैठी थी । फूलों का रस पीने के लिये उसने मीलों का चक्कर लगाया था । जीतू ने पूछा--'चन्दा दीदी ! आज तुम बोलती नहीं, बीमार हो क्या ?'

'नहीं भैया ! बीमार तो नहीं हूँ, पर आज बड़ी थक गयी हूँ । कई मीलों तक घूमी जो हूँ ।' चन्दा ने अपनी मूछों को फड़फड़ाते हुए कहा ।

'दीदी ! तुम फूल-फूल पर मँडराती हो ? देखो मेरी तरह बैठकर ही फल खाया करो ।' अधपके अनार को कुतरते हुए जीतू बोला ।

'पर मैं फल खा तो नहीं सकती ! मैं तो केवल शहद ही ले सकती हूँ ।' चन्दा कहने लगी ।

'शहद कैसा होता है यह ?' जीतू आश्चर्य से बोला । उसने तो शहद का नाम भी नहीं सुना था ।

'शहद बड़ा मीठा होता है । बड़ा ही गुणकारी होता है । अमृत जैसा होता है ।' चन्दा लगातार प्रशंसा करती जा रही थी ।

यह सब सुन-सुन कर जीतू को बड़ा दुःख हुआ कि उसने शहद आज तक क्यों नहीं चखा ? किसी भी प्रकार से शहद चखने के लिये दीवाना हो उठा । मैं अभी पता करता हूँ कि कैसा होता है शहद ?' जीतू ने कहा और जाकर एक बड़े से सुन्दर फूल पर बैठ गया, जिस पर तितली कुछ देर पहले बैठी थी । जैसे ही तोते ने चोंच चलाई कि फूल बेचारा डाल से टूटकर नीचे गिर पड़ा । फिर वह दूसरे फूल पर बैठा, तो उसका भी वही हाल हुआ । यह देखकर तितली रुँआसी हो गयी । भर्राये गले से, आँखों में आँसू भरकर बोली-'बस करो अब ! रहने दो, इस तरह तो सारे के सारे फूल टूटकर नीचे गिर पड़ेंगे ।'

'पर फिर मैं शहद कैसे पाऊँगा ?' जीतू बोला ।

'इस तरह से तो शहद नहीं पी सकते भैया ! वास्तव में

बात यह है कि तुम्हारे मेरी तरह लम्बी सूँड़ नहीं है । अतएव तुम फूलों का रस कैसे पी सकोगे ?' चन्दा दुःखी मन से बोली ।

'पर तुमने तो मुझे शहद के नाम से बहुत ही ललचा दिया है । अब उसे पाने का तुम्हीं बताओ कोई तरीका ?' जीतू अपने पंख फड़-फड़ाकर कहने लगा ।

'पर मैं तो शहद इकट्ठा करता नहीं । फूलों से ही अपनी सूँड़ लगाकर पी जाती हूँ, कैसे चखा पाऊँगी तुम्हें ?' अपने सिर पर हाथ रखकर सोचती हुई चन्दा बोली ।

'तो फिर शहद खाने-पीने का कोई उपाय नहीं है क्या ?' बड़े ही निराश स्वर में जीतू पूछने लगा ।

चन्दा सहसा बोल पड़ी--'हाँ ! एक उपाय है, याद आया । मधुमक्खी भी तो फूलों से रस लेती हैं । वे उससे शहद बनाती हैं और अपने छत्ते में ही रखती हैं । तुम यदि उनसे विनती करो तो शायद दया करके थोड़ा-शहद वे तुम्हें चखा दें ।'

'पर कौन मधुमक्खी मेरी बात मानेगी ?' जीतू बोला ।

'यह समस्या तो मैं सुलझा सकती हूँ । यामा नाम की एक रानी मक्खी मेरी पक्की सहेली है । यहाँ से एक मील दूर गुलाब के बगीचे में वह रहती है । तुम उससे जाकर मेरा नाम ले देना । वह मधुमक्खी तुम्हें निश्चित ही शहद चखा देगी ।' चन्दा पंख फड़फड़ाकर कहने लगी ।

जीतू यह सुनकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ । उसने अपनी गर्दन नचायी, पंख चलाये और वह उड़ चला तेजी से गुलाब के बगीचे की ओर ।

यामा मधुमक्खी का छत्ता खोजने में उसे कोई कठिनाई नहीं हुई । छत्ते के द्वार पर बैठी मधुमक्खियों से उसने अपने आने का सन्देश रानी मधुमक्खी के पास भिजवाया । रानी अन्दर से निकल कर बाहर आयी ।

'मुझे आपकी सहेली चन्दा तितली ने भेजा है । उन्होंने

कहा है कि आप मुझे थोड़ा-सा शहद चखा दें ।' जीतू तोता याचना भरी वाणी में बोला ।

'जरूर-जरूर !' यामा मक्खी ने कहा और अपनी सेविकाओं को अन्दर से शहद ले आने का आदेश दिया । वे तुरन्त जाकर शहद ले आयीं । तोता उसे चखते ही झूम उठा । वास्तव में उसने इतनी स्वादिष्ट, इतनी मीठी चीज चखी तक न थी । उसने शहद के लिये यामा मक्खी को बहुत धन्यवाद दिया ।

दूसरे दिन भी जीतू अपने आपको न रोक सका और उड़ चला शहद खाने । शहद उसे इतना भाया कि उसका स्वाद आते ही वह अपने आपको रोक न पाता । रोज सोचता कि बस आज चला जाता हूँ, कल नहीं जाऊँगा, पर उससे अपने को रोका न जाता और शहद के लालच में यामा मक्खी के यहाँ दूसरे दिन भी उड़ चलता । सच ही है जो केवल सोचते भर हैं, जैसा सोचते हैं वैसा करते नहीं, वे कभी अपने को अच्छाई के रास्ते पर नहीं चला पाते ।

जीतू अब रोज-रोज ही शहद माँगने आने लगा । यामा को यह बुरा लगा । भला रोज-रोज किसी से चीज माँगना क्या अच्छी बात है ? आखिर एक दिन उसने कह दिया-- 'भाई ! अब हम आपको शहद नहीं दे पायेंगे ।'

यह कहकर यामा छत्ते के अन्दर चली गयी, पर जीतू के मुँह में शहद के लालच से पानी भरा चला आ रहा था । उसने बहुतेरा चाहा कि उड़ चले, पर वह अपने लालच पर विजय न पा सका और वहीं बैठा रहा । बैठे-बैठे रात घिर आयी । अब जीतू से न रहा गया । उसने रात के अन्धेरे में चुपचाप शहद चुराने की सोची । उसने छत्ते के अन्दर अपनी पूरी चोंच घुसा दी, पर यह क्या ? उस पर तो तुरन्त अनेकों मधुमक्खियाँ चिपक गयीं । जीतू ने जल्दी से चोंच बाहर निकाली, पर मधुमक्खियों ने पीछ ही न छोड़ा । वे उसकी पूरी की पूरी चोंच पर बुरी तरह चिपक गयी थीं और जोर-जोर से काट रही थीं । चोंच से खून बहने लगा ।

'छोड़ दो–छोड़ दो मुझे !' जीतू तोता जोरों से चिल्लाया ।

'अरे ! यह तो जीतू है ।' अन्धेरे में उसकी आवाज सुनकर यामा बोली और मक्खियों से उसे छोड़ देने के लिये कहा ।

जीतू चुपचाप सिर झुकाये रानी मक्खी के सामने बैठा था । आँखें उठाने की भी हिम्मत नहीं हो रही थी । वह रंगे हाथों पकड़ा गया था । चोर चोरी करके दूसरों को अपना मुँह दिखाने की हिम्मत कर भी कैसे सकता है ?'

यामा आवेश में आकर कहने लगी–'छिः ! कितनी गन्दी बात है । तुम अपने स्वाद पर काबू न रख सके । खाने की चीज के जरा से लालच को न रोक सके । उसके कारण तुम चोरी जैसा भयंकर पाप भी करने से न हिचके । जो अपने स्वाद पर काबू नहीं रख पाता है, दूसरों से अपमान पाता है । तुम्हारी खैर इसी में है कि चुपचाप तुम यहाँ से भाग जाओ फिर कभी चोरी करने की हिम्मत की, तो सारी की सारी मधुमक्खियाँ तमुम्हारे शरीर पर चिपक जायेंगी । खा जायेंगी तुम्हें, मार डालेंगी तुम्हें ।'

जीतू चुपचाप अपना–सा मुँह लेकर वहाँ से उड़ आया । इतना अपमान तो जीवन में उसने कभी न सहा था । वह सोच रहा था कि लालच से बहुत से अवगुण स्वयं आ जाते हैं और प्राणी अनेक पाप करने लगता है । तभी वह दूसरों से तिरस्कार पाता है । मुझे अपनी करनी का, जीभ के स्वाद पर काबू न रखने का उचित ही फल मिला है । जीवन भर के लिये सबक मिल गया । अब मैं खाने की चीजों के लालच में आकर कभी भी गलत काम नहीं करूँगा ।

रास्ते में खून से लथपथ अपनी चोंच पर जीतू ने मैना काकी से पट्टी बँधवायी ओर तब अपने पाप का प्रायश्चित्त करने के लिये भूखा–प्यासा आकर वह अपने कोटर में सो गया ।



मित्रता की परख

रत्नगिरी की पहाड़ियों में एक पेड़ के नीचे बिल बनाकर एक खरहा रहता था । बचपन में ही उसके माता–पिता मर गये थे । उसका कोई सगा–सम्बन्धी भी न था ।

जब खरहा बड़ा हो गया तो उसने सोचा कि अब मुझे विवाह कर लेना चाहिये । गृहिणी आयेगी तो काम–काज में भी हाथ बँटायेगी और सूना घर काटने के लिये भी न दौड़ेगा ।

यह सोचकर वह खरहा पास ही रहने वाले एक वृद्ध दम्पत्ति के पास गया । उनसे उसने यह प्रार्थना की कि वे अपनी बेटी का विवाह उसके साथ कर दें ।

'कौन–कौन हैं तुम्हारे घर–परिवार में ?' वृद्ध खरगोश ने उससे पूछा ।

खरहे ने बता दिया कि उसके माता–पिता बचपन में ही मर चुके हैं । 'कोई रिश्तेदार भी नहीं है ।'

'मित्र तो होंगे ही ।' फिर उससे पूछा गया ।

'नहीं मेरा कोई मित्र भी नहीं है । अकेला ही हूँ मैं तो ।' खरहा उदास होकर कह रहा था ।

'तो जाओ पहले तुम मित्र बनाकर आओ । तभी तुम्हारे साथ हम अपनी बेटी का विवाह करेंगे । जिसका कोई मित्र नहीं, घर–परिवार में कोई नहीं तो मुसीबत पड़ने पर उसकी कौन सहायता करेगा ?' वृद्ध खरगोश दम्पत्ति बोले ।

निराश होकर खरहा चल पड़ा मित्र बनाने । आखिर विवाह तो उसे करना ही था ।

रास्ते में मिली एक मधुमक्खी । खरहा बोला– 'दीदी–दीदी ! क्या तुम मेरी मित्रता स्वीकार करोगी ?'

फूल का रस चूसती हुई मधुमक्खी बोली–'मैं क्या जानूँ तुम कौन हो और कैसे हो ? अज्ञात कुल–शील वाले से मित्रता हो भी कैसे सकती है ?'

रोने–रोने को हो आया खरहा । उसे लगा कि मधुमक्खी मना कर ही देगी । बहुत ही खिन्न मन से उसने मधुमक्खी को बताया यह सब कि यदि उसका कोई मित्र नहीं बनेगा तो उसका विवाह भी नहीं होगा ।

मधुमक्खी को दया आ गयी । सोचने लगी कि मेरे द्वारा किसी का उपकार हो जाये तो अच्छा ही है । क्योंकि जो बिना किसी बदले की भावना के उपकार करता है वही सज्जन कहलाता है । यदि किसी वस्तु की इच्छा से उपकार किया तो उसमें कौन–सी महानता है ? ऐसा उपकार तो सभी कर देंगे । अतएव वह अपने पंखों को तेजी से घुमाकर खरहे से बोली–'खरहे भाई ! मैं तुम्हारी मित्रता स्वीकार करती हूँ, पर याद रखना–कभी बुरा सोचा, धोखा देने की कोशिश की तो दोस्ती खतम हो जायेगी । मित्र बनाना सरल है, पर मित्रता का निर्वाह करना कठिन हुआ करता है ।'

'समय आने पर तुम मुझे परख लेना । मैं बहुत अच्छा दोस्त साबित होऊँगा ।' खरहा बोला । उसने मधुमक्खी का बहुत–बहुत आभार माना और आगे बढ़ गया ।

थोड़ी दूर चलने पर मिली एक गिलहरी ।

'गिल्लो दीदी ! मैं तुमसे दोस्ती करना चाहता हूँ । खरहा दाँत निकालकर दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते करते हुए उससे बोला ।

'क्यों ?' गिलहरी ने गर्दन ऊपर उठाकर पूछा ।

'यदि मित्र न हो तो संसार वन जैसा है ।' खरहे ने कहा ।

गिलहरी खुशी से दाँत निकालती हुई बोली–' वाह ! तुम

तो बड़े दार्शनिक और ज्ञानी लगते हो, तुमसे दोस्ती अच्छी रहेगी । ज्ञानी मित्र जीवन का सबसे बड़ा वरदान है ।' गिलहरी और खरगोश ने जोरों से हाथ मिलाकर दोस्ती पक्की की ।

अब खरहा खुशी-खुशी वृद्ध दम्पत्ति के पास पहुँचा । बड़ी ही खुशी से उसने बताया कि उसके दो मित्र बन गये हैं ।

'ठीक है-ठीक है । अधिक मित्र जो विश्वासघाती हों, समय पर सहायता न करें तो उनकी अपेक्षा दो-चार सच्चे मित्र ही होना अच्छा है ।' वृद्ध खरहे ने कहा ।

और तब वृद्ध दम्पत्ति ने अपनी बेटी का विवाह खरहे के साथ कर दिया ।

खरहा अपनी खरही के साथ बड़े ही सुखपूर्वक रहने लगा । उसके दोनों मित्र मधुमक्खी और गिलहरी भी उसके घर रोज आते ही थे । खरही सभी का खुशी-खुशी स्वागत करती । उन्हे जलपान कराती, उनसे मीठी वाणी बोलती । सभी मिल-जुलकर खाते-पीते और मौज मनाते । खरहा सोचता- 'देखो ! मैं कितना मूर्ख रहा जो इतने दिनों तक मित्रों से वंचित अकेला पड़ा कुढ़ता रहा, दुःख उठाता रहा । अकेले में आनन्द ही पूरा मिलता है, न दुःख ही कम होता है । सच्चा मित्र ही दुःख को कम करता है ।' आनन्द से खरहा-खरही के दिन बीत रहे थे । तभी एक दिन की बात है कि दोनों प्रातःकाल की ठण्डी-ठण्डी हवा में घूमने जा रहे थे । आगे-आगे था खरहा, पीछे-पीछे थी खरही । अचानक खरहा चिल्ला उठा-'अरे ! तुम आगे एक पैर भी न बढ़ाना । यहाँ शिकारियों ने तो जाल बिछा रखा है ।'

खरहा बुरी तरह जाल में फँस गया था । खरही उसकी बात सुनकर एकदम वहीं ठिठक गयी । खरहा जाल से

निकलने के लिये छटपटा रहा था । खरही सोचने लगी–'क्या करूँ, कैसे इसे जाल से निकालूँ ? कहीं ऐसा न हो कि जल्दी ही शिकारी आ जायें ।'

तभी खरहा बोला–'अरी सुनती हो ! मैं अपने आप तो जाल से निकलने से रहा । क्यों न तुम दौड़कर गिलहरी और मधुमक्खी के पास चली जाओ । मित्रों की परख दुःख में ही होती है । सुख में तो सभी साथ दे देते हैं । जो संकट पड़ने पर प्राणपण से मित्र का दुःख दूर करता है वही सच्चा मित्र होता है ।'

'ठीक कहते हैं आप ! मैं दोनों को अभी बुलाकर लायी ।'खरही बोली और तेजी से दौड़ गयी वहाँ से ।

'गिल्लो दीदी ! गिल्लो दीदी दौड़ो । वे तो मृत्यु के मुख में पड़े हैं ।' यह कहते हुए खरही ने जल्दी–जल्दी गिलहरी को पूरी बात बतलाई ।

'वह मित्र भी कैसा जो समय पड़ने पर मित्र की सहायता न करे ।' गिलहरी ने कहा और तेजी से दौड़ गयी उस जगह जहाँ खरहा जाल में फँस गया था ।

अपने पैने–पैने दाँतों से गिलहरी जाल काटने लगी । खरही सोचने लगी विपत्ति में एक से दो भले । क्यों न मैं मधुमक्खी को भी बुला लाऊँ ।

गिलहरी और खरहे ने मना भी किया, पर खरही बोली–'हम नहीं जानते कब, किस अनजानी मुसीबत में फँस जायेंगे । अपनी ओर से संकट के प्रतिकार का पूरा–पूरा प्रयास करना ही चाहिये ।' और वह मधुमक्खी की तलाश में निकल पड़ी ।

खरही जब वापस आयी तो जाल थोड़ा–सा ही कटने को शेष रह गया, पर तभी उसकी निगाह सामने से आते शिकारी पर पड़ी । 'हे भगवान अब क्या होगा ?' मन ही मन में उसने सोचा ।

सहसा तभी मधुमक्खी जो अपनी पूरी सेना के साथ आ रही थी, शिकारी पर टूट पड़ी । मधुमक्खियों के आक्रमण से घबराकर शिकारी तेजी से वहाँ से भाग छूटा ।

थोड़ी ही देर में जाल पूरी तरह से कट गया । खरहा उछल कर निकल आया । आते ही वह गिलहरी और मधुमक्खी के गले से लग गया और बोला—'तुमने अपने प्राणों को संकट में डालकर मेरी रक्षा की है । तुम दोनों का यह उपकार मैं जीवन-भर नहीं भूलूँगा । वास्तव में सज्जनों की मैत्री ही जीवन की रक्षा करती है, जीवनोत्थान करती है ।

और तब खरही के आग्रह पर मधुमक्खी और गिलहरी दोनों ही खुशी-खुशी उसके घर के रास्ते पर बढ़ चले उससे शानदार दावत खाने ।



वर का चुनाव

अलकनन्दा के तट पर एक वृद्ध राजहंस रहता था । युवावस्था में ही उसकी पत्नी मर गयी थी, उसे संसार से वैराग्य हो गया । अपनी एक मात्र छोटी-सी पुत्री को लेकर वह अपने घर से निकल पड़ा । देश-विदेश में घूमते-घूमते अन्त में चन्द्रशेखर नाम का वह राजहंस यहाँ आकर बस गया था ।

'यह जीवन समाज की भलाई में जितना काम आ सके उतना ही अच्छा है ।' ऐसा चन्द्रशेखर का विचार था । अतएव वह सभी प्राणियों की किसी न किसी प्रकार से सहायता करता रहता था । खाली समय में वह पास-पड़ौस के पक्षियों के बच्चों को पढ़ाता रहता था । सभी पक्षियों को इस बात पर गर्व था कि चन्द्रशेखर के पढ़ाये बच्चे बड़े ही सच्चरित्र और योग्य बनते हैं । जिस किसी को कोई कठिनाई होती वह चन्द्रशेखर के

पास दौड़ा चला आता । वह अपनी बुद्धि से, ज्ञान से चुटकी बजाते हुए सुलझा देता । कोई भी पक्षी जरा–सा बीमार पड़ता चन्द्रशेखर तुरन्त वहाँ पहँच जाता । वह इतनी मीठी बातें करता कि रोगी अपना दुःख–दर्द भूल जाता और चाहता कि चन्द्रशेखर उसके पास ही बैठा रहे । किसी को कोई काम कराना होता तो चन्द्रशेखर सबसे पहले हाजिर रहता । अपने इन सभी गुणों के कारण अलकनन्दा के तट से दूर–दूर तक भी चन्द्रशेखर की बड़ी ही प्रसिद्धि हो गयी थी । सभी पशु–पक्षी उसका बहुत ही सम्मान करते थे ।

चन्द्रशेखर की पुत्री मन्दाकिनी बहुत ही गुणवती थी । रूप में तो उसके समान सुन्दर हंसिनी दूर–दूर तक ढूँढ़े नहीं मिलती थी । एक दिन अचानक ही चन्द्रशेखर का ध्यान गया कि उसकी पुत्री युवती हो गयी है । अब उसे उसके विवाह की चिन्ता होने लगी । अपनी पुत्री के योग्य वर मैं कहाँ पाऊँ ? रात–दिन वह इसी चिन्ता में घुलने लगा । उसे अपनी मृत पत्नी की याद आती । यदि वह इस समय जीवित होती तो अपनी सलाह देती । विवाह–शादियों के मामले में स्त्रियाँ ही अच्छी तरह सलाह दे सकती हैं । चन्द्रशेखर मन्दाकिनी से कुछ बातें करना चाहता तो वह शरमाकर भाग जाती । वह समझ ही न पा रहा था कि क्या करे, क्या न करे ? इन सब का प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर भी पड़ा । वह दिन पर दिन दुबला होने लगा ।

'चन्द्रशेखर का एक पक्का मित्र था मृत्युंजय नाम का सारस । एक दिन वह पूछ ही बैठा–'दोस्त ! किस चिन्ता में तुम दुबले होते चले जा रहे हो ?'

'देख तो रहे हो तुम कि मन्दाकिनी युवती हो गयी है । इसके विवाह की चिन्ता ही मुझे दिन–रात खाये जाती है । कहाँ पाऊँगा मैं इसके योग्य वर ? ज्यादा भाग–दौड़ भी तो नहीं कर पाता ।' बूढ़ा चन्द्रशेखर दुःख से अपनी गर्दन एक ओर लटकाकर बोला ।

'आस-पास दो-तीन राजहंसों के परिवार रहते हैं उनसे बात चलाओ ।' मृत्युंजय ने सलाह दी ।

'ओह ! उन परिवारों का चाल-चलन मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं । मैं चाहता हूं कि मेरी बेटी को धनी न मिले, ज्ञानी न मिले तो कोई हानि नहीं । हाँ, उसे गुणी वर जरूर मिले, सच्चरित्र जरूर-जरूर मिले । चरित्र न रहने पर धन और ज्ञान का भी कोई मूल्य नहीं होता । चरित्र रहने पर ये चीजें भी आ सकती हैं ।'

'तुम्हारे विचार तो सचमुच ही बहुत ऊँचे हैं, अच्छे हैं ।' मृत्युंजय प्रशंसा के भाव से बोला ।

'मित्र तुम तो जानते ही हो कि राजहंसों की संख्या वैसे भी बहुत कम है । यहाँ रहने वाले राजहंस मुझे पसन्द नहीं । बुढ़ापे के कारण मुझसे चला जाता नहीं । मैं क्या करूँ, कहाँ ढूँढूं ? समझ नहीं पा रहा, क्या मेरी बेटी क्वारी ही रह जायेगी ? कहते-'कहते पीड़ा की अधिकता से रो उठा राजहंस । उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से गर्म-गर्म आँसू टपकने लगे ।

मृत्युंजय कुछ देर तक सोचता रहा । फिर चन्द्रशेखर के आँसू पोंछकर बोला-'भाई ! रोओ मत । मुझे एक बहुत ही अच्छी तरकीब सूझी है ।'

'क्या ?' मानो आँखों में ही राजहंस ने प्रश्न किया ।

'क्यों न हम मन्दाकिनी बिटिया का स्वयंवर रच दें ?' अपने एक पंजे को दूसरे में उलझाते हुए कहने लगा मृत्युंजय ।

'बात तो तुम्हारी अच्छी है, पर स्वयंवर के लिये कौन जायेगा दूर-दूर तक बुलावा देने के लिये ।' चन्द्रशेखर बोला ।

'सुनो ! तुम्हारे काम के लिये तो अलकनन्दा के तट का कोई भी प्राणी मना नहीं करेगा । जो दूसरों की सहायता करता है सभी उसका काम करने को तैयार रहते हैं । ऐसा

करते हैं कि चिन्मय कबूतर को बुलाते हैं । वह देश-विदेश में घूम-घूमकर स्वयंवर का सन्देश दे आयेगा । इस काम में देर तो जरूर लगेगी, पर योग्य वर पा सकोगे । फिर विवाह के मामले में वैसे भी सोच-विचार कर ही कदम उठाना चाहिये, जल्दबाजी कभी भी नहीं करनी चाहिये-नहीं तो जीवन भर पछताना ही पड़ता है ।' अनुभवी मृत्युंजय सारस ने कहा था ।

'मित्र ! तुम्हारी ही बात सही है ।' गर्दन हिलाते हुए राजहंस बोला ।

दूसरे ही दिन चिन्मय कबूतर राजहंस दादा का काम करने की खुशी से उड़ चला । देश-विदेश में अनेक स्थानों पर वह गया । जगह-जगह राजहंसों के परिवारों को खोजा । मन्दाकिनी के रूप-गुण का परिचय दिया । वह सभी राजहंसों को वसन्त पंचमी के दिन स्वयंवर में आने का निमंत्रण दे आया ।

निश्चित दिन स्वयंवर का आयोजन किया गया । कमल के फूलों से, पत्तों से अनेक लताओं से पास के तालाब को सजाया गया । एक ऊँचे से लता मण्डप पर चढ़कर चन्द्रशेखर और मन्दाकिनी बैठे । देश-विदेश से आये सभी राजहंसों को आदरपूर्वक बैठाया । सजी-सँवरी, गोरी-गोरी लाल चोंच वाली मन्दाकिनी को देखकर सभी मुग्ध हो उठे । गर्दन झुकाकर, आँखें नीची करके बैठी थी वह । सभी राजहंसों के मन में विचार उठने लगा कि वह हंसिनी मुझे ही मिल जाये । वे उसकी सुन्दरता से तो नहीं स्वभाव से, सभ्यता से अधिक आकर्षित थे ।

सम्माननीय अतिथियो ! मैं आप सभी का हार्दिक स्वागत करता हूँ । आप सभी ने यहाँ आकर सचमुच ही मुझ पर असीम कृपा की है । कृपया अब आप सभी बारी-बारी से अपना परिचय देते जाइयेगा ।' हर्ष विह्वल चन्द्रशेखर बोला ।

अब परिचय का क्रम आरंभ हुआ । सबसे आगे बैठा जितेन्द्र नाम का हंस उठ खड़ा हुआ । गर्दन ऊँची करके,

अकड़कर वह बोला--'महोदय ! मैं डाक्टर हूँ । बहुत से धनवानों के प्रस्ताव मेरे लिये आ रहे हैं । आप चाहें तो अपनी बेटी मुझे दे सकते हैं ।'

इसके बाद भास्कर नाम का दूसरा हंस बोला-'मैं ! बहुत ही धनी व्यापारी हूँ । दूर-दूर तक मेरा व्यापार फैला है । आपकी बेटी को हाथ ही हाथों में रखूँगा ।'

उसके धन का यह दर्प चन्द्रशेखर को बुरा लगा । भला धन से भी कोई खुशी खरीद सकता है ?' मन ही मन उसने कहा ।

इसके बाद आलोक नाम का हंस बोला-"मेरे जैसा सुन्दर आपको इस पृथ्वी पर ढूँढ़े भी न मिलेगा ।'

सचमुच ही वह बहुत सुन्दर था । पलभर को तो चन्द्रशेखर भी उसकी ओर टकटकी लगाकर देखते रहे । फिर सोचने लगे कि शरीर की सुन्दरता से अधिक मन की सुन्दरता जरूरी है ।

इसी प्रकार एक-एक करके सभी राजहंस अपना परिचय देते जा रहे थे । अपने गुणों का बढ़ा-चढ़ाकर वे गान कर रहे थे, पर चन्द्रशेखर के मन को कोई भी नहीं भा रहा था । वह उदास-सा होने लगा ।

सबसे अन्त में परिचय दिया देवेन्द्र हंस ने-'सम्माननीय दादाजी और उपस्थित मित्रो ! परिचय का जो क्रम प्रारम्भ हुआ है उसके अनुसार क्या परिचय दूँ मैं भला आपको ? क्यों कि मेरी दृष्टि में किसी का रूप प्रमुख नहीं है, धन प्रमुख नहीं, ज्ञान प्रमुख नहीं, प्रसिद्धि और सम्मान मुख्य नहीं है । मैं तो सोचता हूँ कि गुण, कर्म और स्वभाव का परिचय ही किसी का सही परिचय होता है । कोई बड़ा है या छोटा-इसका मूल्यांकन हम उसके गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर ही कर सकते हैं । जिसने अपने स्वभाव को अच्छा नहीं

बनाया, जीवन को गुणों से नहीं सजाया तो वह ऊँचे पद पर बैठकर भी ऊँचा नहीं होता । भवन के सर्वोच्च शिखर पर बैठा कौवा भी क्या कभी राजहंस हो सकता है ?

उसका यह बोलना था कि पूरा का पूरा तालाब तालियों से गूँज उठा । पलभर कुछ रुककर देवेन्द्र फिर आगे बोला ।

'मैं आपकी बेटी के लिये सुख-सुविधायें जुटा पाऊँगा या नहीं कह नहीं सकता । मैं तो बस अपने उच्च विचार, सच्चरित्रता की निधिही उसे सौंपने का वादा कर सकता हूँ ।'

देवेन्द्र की बातें सुनकर असीम प्रसन्नता से भर उठा चन्द्रशेखर । कितनी विनम्र वाणी थी उसकी । धीमे से पंजा हिलाकर मन्दाकिनी को इशारा किया । वह लज्जापूर्वक उठी और कमलनाल तथा कमल पुष्पों से बनाई गयी सुगन्धित जयमाला उसने देवेन्द्र के गले में डाल दी । अलकनन्दा के तट पर रहने वाले सभी पक्षी खुशी से चहचहाने लगे । रानी कोयल ने मंगल गीत गाये । हरियल तोता ने मंगल पीपनी बजाई । वृद्ध चन्द्रशेखर मंच पर खड़ा होकर कह रहा था-'माननीय अतिथियो ! मैं आपसे इस निर्णय के लिये क्षमा चाहता हूँ । वास्तव में प्यार और सहयोग से भरा-पूरा परिवार ही धरती पर स्वर्ग जैसा होता है । ऐसा परिवार बनता है अच्छे गुणों से, अच्छे स्वभाव से और अच्छे व्यवहार से । इसी विचार से प्रेरित होकर सौभाग्याकांक्षिणी मन्दाकिनी ने देवेन्द्र के गले में जयमाला डाली है ।

देवेन्द्र के अतिरिक्त सभी राजहंस उदास बैठे रहे । यहाँ तक कि विवाह के बाद होने वाला भव्य प्रीतिभोज भी उन्हें नीरस लग रहा था । मन प्रसन्न न होने पर बाहरी चीजें भला क्या कभी खुशी दे पाती हैं ? भोज के बाद अपने-अपने घर जाने के लिये वे सभी पंक्ति बनाकर वहाँ से उड़ चले ।

आकाश में ऊँची उड़ान भरते सयम वे आपस में कह रहे थे– 'हम तो सोचते थे कि जीवन में ज्ञान ही प्रमुख होता है, धन ही प्रमुख होता है इसीलिये उसी का अर्जन करते रहे । गुण भी जीवन में प्रमुख हो सकते हैं, यह तो हमने कभी विचार तक नहीं किया था । हम अब तक कितने ही महत्वपूर्ण विचारों से वंचित रहे । अब हम भी गुणवान बनने की, स्वभाव और व्यवहार को अच्छा बनाने की साधना में जुट जायेंगे ।

वृक्ष का अभिमान

अमरकण्टक वन में वट का एक बड़ा ही पुराना वृक्ष था । उसकी अनेकों जटायें दूर–दूर तक पृथ्वी में समायी थीं । उसकी सहस्रों शाखायें थी, जिन पर सैकड़ों पक्षी अपने परिवार सहित रहा करते थे । जो भी यात्री अमरकण्टक वन में आता, वह उस वृक्ष के नीचे जरूर बैठता था । उसकी शीतल हवा से वह अपनी थकान भूल जाता था । कभी अमरकण्टक वन के हिरणों का समूह वहाँ डेरा डालता । वनराज भी सपरिवार वहाँ आकर विश्राम करते । सैकड़ों वर्षों से यह क्रम चला आ रहा था । जंगल के सारे ही वृक्ष और पशु–पक्षी उस महावृक्ष के सामने के ही थे ।

एक बार की बात है कि एक यात्री घूमता–घूमता उधर आ निकला । उस वृक्ष को, उसके चारों ओर लिपटी रंग–बिरगे फूलों वाली लताओं को देखकर वह बड़ा ही विस्मित हुआ । उसने वट वृक्ष से कहा–'दादा ! मैं देश–विदेश में बहुत से स्थानों पर घूमा हूँ, पर मैंने इतना विशालकाय और इतना पुराना पेड़ कहीं भी नहीं देखा । तुम्हारी घनी शाखाओं

पर तो पशु–पक्षियों का पूरा का पूरा नगर बसा हुआ है । तुम पर्वत की भाँति विशाल हो, उसी तरह अडिग खड़े हो । फल–फूल, पत्ते आदि सभी से तुम धनी हो । लगता है कि तुम्हें पृथ्वी माता और वायु देवता की विशेष कृपा मिली है, तभी तो तुम इतने अधिक समृद्ध हो ।

पथिक की बात सुनकर वट का वृक्ष झुँझलाकर सिर तानकर बोला–'हुँह ! मैं स्वयं इतना समर्थ हूँ कि मुझे किसी की कृपा की कोई जरूरत नहीं । पृथ्वी जो अंश औरों को देती है, उतना ही मुझे देती है और वायु मेरा वह बिगाड़ भी क्या सकता है ? मैं स्वयं ही इतना शक्तिमान हूँ कि मुझसे वह स्वयं डरकर ही भाग जायेगा । मेरे पास आने तक की उसकी हिम्मत नहीं ।

पथिक ने वृक्ष से कहा कि तुम्हें कृतघ्न नहीं बनना चाहिये । पर उसने उसकी एक न सुनी और अपनी जिद पर अड़ा रहा ।

वृक्ष और यात्री की बात को स्वयं पवनदेव खड़े सुन रहे थे । उन्हें यह बहुत बुरा लगा । उन्होंने सोचा कि दुष्ट को सबक सिखाना ही चाहिये । उन्होंने पृथ्वी से कहा– 'देखा तुमने, जिसे तुम अपना अंश दे–देकर पाल रही हो, वह कितना नीच बन रहा है––इसे कुछ दण्ड देना ही चाहिये ।'

पृथ्वी बोली–'मैं यदि इसे दण्ड देने की बात सोचूँगी तो जो अंश देती हूँ उसमें कमी करूँगी तो यह निश्चय ही जड़ से उखड़ जायेगा । आप ही इसे कुछ दण्ड दीजिये ।'

तब वायु वट के वृक्ष के पास गया और बोला–'देखो ! मेरी गति बड़ी ही तीव्र है । मेरी शक्ति अपार है, उसे कोई भी सह नहीं पाता । वृक्षों की शाखायें, पुष्प–पत्र और मनुष्यों की विविध प्रकार से सेवा करते हो इसलिये मैं तुम्हारे

प्रति सदैव दयालु रहा हूँ । मैंने न कभी तुम्हारे पत्तों को झड़ने दिया, न फूलों को । तुम मेरा उपकार नहीं मानते तो अवज्ञा भी क्यों करते हो ?'

वट का वृक्ष बड़े ही अभिमान में भरा हुआ था । वह सोचता था कि मैं तो बड़ा शक्तिशाली हूँ । स्वयं पवन में भी मुझे हिलाने की शक्ति नहीं । अतएव झल्लाकर बोला—'जाइये आप ! व्यर्थ की बात सुनने की मुझे आदत नहीं ।'

फिर क्या था । वायु का अब तक का रुका गुस्सा उमड़ पड़ा । इतना तेज तूफान आया कि सभी वृक्ष और पशु—पक्षी काँप उठे । वट वृक्ष के चारों ओर तेज वायु का घेरा उठा । उस पर से सभी पक्षी अपने—अपने घोंसले छोड़कर उड़ गये, शाखायें टूट गयीं, पृथ्वी में समायी लम्बी—लम्बी जटायें उखड़ गयीं । रह गया केवल ठूँठ । यह देखकर पृथ्वी काँप उठी । वायु से बोली—'बस कीजिये देव ! बस कीजिये । अब तो यह ठूँठ ही रह गया है, इसे खड़ा ही रहने दीजिये ।'

वट वृक्ष सहमा—सा खड़ा था । अब उसे यह बोध हो रहा था कि वह अपनी शक्ति का व्यर्थ ही अभिमान कर रहा था । बड़ों की अवज्ञा से, उनके अपमान से अपनी ही हानि होती है । जो हमारे साथ भला करता है उसके उपकार को मानना चाहिये । दूसरों की उदारता को स्वीकार न करने वाला दुःख ही उठाता है ।



मित्रता की मर्यादा

कनक और दया दोनों सहेलियाँ थीं । कक्षा में साथ–साथ ही बैठतीं, पढ़तीं और घर पर भी साथ–साथ ही खेला करती थीं । दया अक्सर अपनी ही माँ की आज्ञा लेकर कनक के घर चली जाया करती थी ।

कनक बड़े ही धनी परिवार की थी । उसके पिताजी उसके लिये अधिक से अधिक खिलौने लाते रहते थे । कनक उनसे दया को भी खेलने देती थी । ये खिलौने दया के नहीं हैं, वह उन्हें छुए नहीं' ऐसा तुच्छ विचार कभी उसके मन में भी न आता था । यही नहीं दया जो भी खिलौना माँगती, कनक उसे खुशी–खुशी दे दिया करती ।

धीरे–'धीरे दया को यह आदत पड़ गयी कि वह कनक से कुछ न कुछ माँगकर ले जाती । कभी कोई खिलौना माँगती, कभी कोई पैन तो कभी कोई फ्राक भी ले जाती । कनक की माँ भी उदार विचारों वाली बड़ी ही सहृदय महिला थी । वे दया के घर की स्थिति भी जानती थीं । अतएव वे कनक को कुछ देने से कभी रोका नहीं करती थीं ।

दया सब चीजें अपने घर ले जाती, माँ को दिखाती तो वे अच्छी हैं कहकर अपने काम में लग जातीं । कभी भी उन्होंने दया से यह नहीं कहा कि तुम इस प्रकार चीजें न माँगा करो । उल्टे दया को जब किसी चीज की जरूरत होती तो वह माँ के आगे कोई फरमाइश रखती तो वे यही कह देतीं कि कनक से ले आना ।

अपनी माँ से इस प्रकार प्रोत्साहन मिलने का यह फल हुआ कि दया अब तो हर तीसरे–चौथे दिन कोई न कोई माँग करने लगी । यही नहीं, वह कोई भी चीज उठाकर खड़ी हो

जाती । 'इसे मैं ले जा रही हूँ कनक' कहकर चलती बनती । कनक बेचारी संकोच के कारण कुछ बोल भी न पाती ।

दया का इस तरह रोज चीजें माँगना अब कनक को भी बुरा लगने लगा । उसने एक-दो बार घुमा-फिराकर दया से इसके लिये मना भी किया, पर दया पर इसका कोई असर न पड़ता । वह तो पक्की मँगती बन गयी थी ।

एक दिन तो हद हो गयी । कनक के पिताजी ने उसे देश-विदेश की रंग-बिरंगी अनेक गुड़िया लाकर दीं । अभी कनक उनको खोल ही रही थी कि दया भी आ गयी । दोनों सहेलियों ने अलमारी में सारी गुड़ियाँ सजायीं । दोनों देर तक उनके कपड़े-गहने आदि के बारे में बतियाती रहीं । घर चलते समय रोज की आदत के अनुसार दया ने जापानी और कश्मीरी गुड़िया उठा लीं । वे उसे बहुत ही अच्छी लगी थीं ।

जैसे ही दया चलने लगी कि कनक ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोली-'ये मैं न ले जाने दूँगी ।'

'क्यों ?' भौंह चढ़ाते हुए दया ऐसे बोली मानो वह अपनी ही चीज ले रही हो ।

'मैं अपना नया सैट बिगाड़ने न दूँगी ।' कनक ने कहा ।

'ओह ! दो गुड़ियाँ अगर न रखी जायेंगी, तो क्या नुकसान हो जायेगा ?' दया बोली और कनक से हाथ छुड़ाने की कोशिश करने लगी ।

'लाओ मुझे मेरी गुड़िया दे दो ।' अब गुस्से में भरकर कनक ने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये ।

दया ने भी तुनककर पूरे जोर से उन्हें जमीन पर पटक दिया । कनक को लगा जैसे किसी ने उसको ही मार दिया हो । दौड़कर उसने गुड़िया उठायीं और अपने हृदय से लगा लिया ।

'कुट्टी ! अब हमारी तुम्हारी दोस्ती खतम ।' दया चीखकर बोली ।

'सभ्यता से बोली दया ! हमारी तुम्हारी दोस्ती तो वैसे भी खतम हो जाती । आखिर मित्रता की कोई मर्यादा होती है । जो अपने दोस्त से रोज-रोज ही कुछ न कुछ माँगता है तो उसकी दोस्ती जल्दी ही खतम हो जाती है । जो बहुत माँगता है, उससे सभी दूर रहना चाहते हैं । वह व्यक्ति जिन्हें अपने पास की चीजों से सन्तोष नहीं होता, दूसरे की वस्तु देखकर ललचाते रहते हैं, कभी सुख और सन्तोष नहीं पा सकते ।' कनक ने उस दिन कह ही दिया ।

'अब मैं तुम्हारे घर झाकूँगी भी नहीं ।' कहकर पैर पटकती दया वहाँ से चली गयी ।

अब दया और लड़कियों को अपनी सहेली बनाना चाहती है । शुरू में तो उसका साथ सबको अच्छा लगता है, पर कुछ दिनों बाद ही सभी उससे दोस्ती तोड़ लेते हैं । इसका कारण है दया की माँगने की आदत । फल यह होता है कि अब वे उससे अलग ही हो जाती है । उसके साथ न कोई बैठने को तैयार होता है और न खेलने को ।

दया अपने मन में सोचा करती है-'काश ! और बच्चों की माँ की तरह मेरी माँ ने भी शुरू में ही दूसरों की चीजें लेने से मुझे टोका होता तो आज यह दिन न देखना पड़ता । क्यों सभी मेरा तिरस्कार करते, मुझसे दूर रहते ?'



हाथी का उपदेश

हाथी के दो बच्चे घूमने निकले । वे अभी छोटे थे, इसलिये उनके माता-पिता उन्हें अकेले घूमने से रोका करते थे । आज पहली बार वे माता-पिता को मनाकर जैसे-तैसे बाहर निकले थे ।

घुमते-घूमते वे एक गन्ने के खेत के किनारे आ खड़े हुए । मोटे-मोटे ताजे, ऊँचे गन्ने वहाँ लगे थे । उन्हें देखकर दोनों के मुँह में पानी आने लगा ।

एक चल ही पड़ा गन्ना तोड़ने । दूसरा रखवाली के लिये खेत के किनारे पर खड़ा रहा । पहले ने गन्ना तोड़ने की बहुत कोशिश की, खूब जोर लगाया, पर वह उसे पूरी तरह उखाड़ नहीं पाया । दूसरे ने उससे कहा-'आओ तो सही, जरा तुम भी सहायता करो, मिल-जुलकर करने से शायद काम हो जाये ।'

संगठन में शक्ति होती है । दूसरे के सूड़ लगाते ही गन्ना जड़ से उखड़ आया । गन्ने को अपनी सूँड़ से पकड़कर, जीत भाव से झूमते दोनों खेते से बाहर निकल आये ।

अब आई गन्ने के बँटवारे की बात । पहला सोचने लगा-'सारी कोशिश तो मैंने की है, मैंने ही इसे झकझोरकर कमजोर बना दिया था । इसने तो बस जरा-सी सूँड़ लगायी है, इसलिये इसका अधिकार कम ही बनता है ।' यही बात उसने दूसरे साथी को भी कह दी ।

इस बात पर वह बिगड़ कर खड़ा हो गया । गुस्से में भरकर बोला-'तुमसे कम तो मेहनत मैंने नहीं की है । एक इन्च भी कम गन्ना नहीं लूँगा ।'

दोनों बहुत देर तक इसी बात पर झगड़ते रहे, पर वे आपस में कोई भी निर्णय नहीं कर पाये । सहसा पहले की निगाह झाड़ियों के किनारे बैठे एक वृद्ध भालू पर गयी । वह भालू बड़ी देर से चुपचाप उनकी सारी बातें सुन रहा था और मन ही मन उनकी मूर्खता पर हँस रहा था ।

'भालू काका ! आप ही सही-सही बताइये कि इस गन्ने पर हम दोनों में से किसका अधिकार सबसे अधिक बनता है ?' पहला यह बोला ।

भालू अपनी गरदन हिलाकर और कुछ गम्भीर बनकर बोला-'बच्चो ! बात ऐसी है कि मैं वनराज के यहाँ वर्षों न्यायाधीश रहा हूँ । अतएव पूरी बात को अच्छी तरह से सुन-समझकर ही निर्णय देने की मेरी आदत है ।'

दोनों बोल उठे-'ओह ! आप जैसा अच्छा निर्णायक तो हमें खोजने पर भी न मिलेगा ।'

दोनों ही ने बड़े विस्तार से अपनी-अपनी बात भालू दादा के सामने रखी ।

भालू ने ध्यान से उनकी सारी बात सुनी । इतने बड़े गन्ने में से पहले को ऊपर के पत्तों के साथ दो पोरी तोड़कर दे दीं । दूसरे को गन्ने की नीचे की जड़ के साथ दो पोरी तोड़कर पकड़ाईं । बाकी बचा शेष हिस्सा मेरी फीस का होता है ।' भालू ने कहा और उसे लेकर चलता बना ।

रास्ते में भालू सोच रहा था-'बुढ़ापे के लिये अच्छी लाठी मिली ।' दोनों हाथी एक-दूसरे का मुँह ताकते रह गये ।

अब दोनों ही बैठकर रोने लगे । पहली-पहली कमाई और वह भी कोई यों ही हड़प ले जाये तो सचमुच दुःखी होने की ही बात थी ।

उधर से निकला एक वृद्ध हाथी । रोते देखकर उसने कारण पूछा । दोनों ने सिसकते हुए सारी कथा सुना दी ।

वृद्ध हाथी ने उन्हें समझाया–'बच्चो ! अपनी चीज सदैव मिल–बाँटकर खाओ । इसे अधिक मिलती है, मुझे कम–ऐसी छोटी बात कभी मन में न लाओ । सोचो कि रत्ती भर उधर ज्यादा गयी या इधर कम–इसमें क्या अन्तर पड़ता है ? यह तो बस मन को समझाने भर की बात होती है । खाने–पीने की चीजों पर, ऐसी जरा–जरा–सी बातों पर झगड़ना नीचता ही नहीं मूर्खता भी है । तुम्हें मूर्ख समझकर भालू सारा हिस्सा हड़प बैठा ।

हाथी के दोनों बच्चों को अपनी गलती का अहसास हो रहा था । 'दादाजी ! अब हम कभी ऐसा नहीं करेंगे ।' उन्होंने अपने–अपने आँसू पोंछकर कहा ।

'तभी तो तुम अच्छे बनोगे ।' बुड्ढा हाथी दोनों की ही पीठ थपथपाकर कहने लगा ।



मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा